ब्रह्मसत्यं **समता**

सर्व आधार

अपार शक्ति

विषय संकेत:-	पृष्ठ
1.महामन्त्र	1
2. मंगत समतावाद का ज्ञापन	5
3.परिचय	8
4. समता तत्व	17
5. समता ज्ञान	21
6. समता धर्म	25
7. समता मार्ग	31
(i) शुद्ध आचरण	33
(ii) सत् कर्म	34
(iii) सत् विचार	35
(iv) सत् निश्चय	35
(v) सत् विश्वास	37
(iv) सत् पुरुषार्थ	37
8.पवित्र जीवन	38
9.सत्पुरूष संवाद	43
10.राम राज्य का स्वरूप	52
11.विश्व शान्ति सन्देश	54
12.समतावाद बनाम ममताबाद	56
13. समतावादी पुरूषों के धर्म	57
14. समतावाद एक नजर में	58
15.प्रभु प्रार्थना (प्रारतीवाणी)	60
16.शान्ति पाठ (समता मंगल)	61
17.सुभाषित	62

॥ महामन्त्र ॥

ओ३म ब्रह्म सत्यं निरंकार अजन्मा

अद्वैत पुरुखा सर्व व्यापक

कल्याण- मूरत

परमेश्वरास

नमस्तं

श्री सद्गुरूदेव मंगतराम जी महाराज

संस्थापक

श्री परम योगी पूज्य सद्गुरुदेव जी महाराज

मंगत राम जी

संगत समतावाद का ज्ञापन

(Memorandum of SANGAT SAMTAVAD)

पंजीकृत अन्तर्गत

Societies Registration Act 21 of 1860

पंजीकृत संख्या-61

वर्ष-1654-55

(१) इस संस्था का नाम 'संगत समतावाद' होगा।

(२) प्रधान केन्द्र एवं शाखाए:---

संस्था का प्रधान केन्द्र जगाधरी (हरयाणा) होगा। | इसकी शाखाएं निम्न स्थानों पर होगी:-

देहली, आगरा, बरेली, हल्दवानी, अम्बाला, जगाधरी सिटी, देहरादून, अबहोर माडी, मलोठ मन्डी, मोगा, समाधभाई, जालन्धर कैन्ट, तरण-तारण, गुरदासपुर, काहनूवान (जिला गुरदासपुर), दुरागला, सुजानपुर, पठानकोट, श्रीनगर (काश्मीर), जम्मू (काश्मीर) अहमदाबाद (गुजरात) |

इन शाखाओं के अतिरिक्त इस संस्था को यह भी अधि कार होगा कि संस्था को अन्य शाखाएं भी आवश्यकतानुसार स्थापित करें।

(3) लक्ष्य एवं उददेश्य:-

(i) यह संस्था पूज्य श्री सद्गुरुदेव महात्मा मंगतराम जो द्वारा स्थापित हुई थी। अतएव मानव मात्र में शाश्वत सत्य के स्थापन तथा अखिल सामाजिक जीवन के सुधार के लिए अपने सदस्यों में सद्गुरुदेव के उपदेशों में संग्रहित सार्वभौमिक आध्यात्मिक ज्ञान जाग्रत एवं दूर करना तथा जन साधारण में उसका प्रचार एवं प्रसार करना संस्था का लक्ष्य होगा।

(ii) सत् के मूलभूत सिद्धान्तों के पालन करने का हर प्रकार से प्रचार करना और हर धर्म सम्प्रदाय (मजहब) मत व पथ को समभाव से देखना |

(iii) संगत के सदस्यों में इस बात का प्रचार करना कि वह अपना जीवन निर्विकारी बनावें तथा दूसरों का कल्याण चाहना अपना मुख्य कर्तव्य समझ।

(iv) भिन्न-भिन्न साम्प्रदायिक (मजहबी) व देशीय (मुल्की) रीति रिवाजों के तंग दायरों से जनता को आजाद कराना और उसको वाद-विवाद से छुटकारा हासिल कराना तथा निष्काम भाव से सत्कर्मों में जनता का दृढ़ विश्वास बढ़ाना।

(v) समभाव ही कल्याण है, समभाव ही जीव का वास्तविक स्वरुप है और परम धाम है, समभाव हो धर्म है। समभाव की प्राप्ति में यत्न करना ही गुरमुख-मार्ग है।

इस कारण इस संस्था का यह कर्तव्य होगा कि समता के सिद्धान्तों का प्रचार करे। और इस प्रकार से जनता को वास्तविक शान्ति की ओर ले जाये।

समता के मुख्य सिद्धान्त यह ही हैं। कि शरीर तथा शरीर की इन्द्रियगम्य समस्त वस्तुओं को नाशवान जानना और जिस सर्व आधारभूत शक्ति के सहारे यह शरीर तथा समस्त संसार खड़ा है, केवल मात्र वह शक्ति ही सत्य है, ऐसा दृढ निश्चय से मानना और इसी सत्य की अनुभूति (Realisation) के लिए समता के पाँच मूल-भूत सिद्धान्त साद्गो, सत, सेवा, सत्संग और सत् स्मरण पर मन, वचन, और कर्म से दृढ़े रहना।

(vi) पूज्य श्री सद्गुरुदेव महात्मा मंगत राम जी प्रणीत समता सिद्धान्तों (असूलों) का प्रचार देश देशान्तर में करना और इसके लिए दूसरे देशों में भी अपनी संस्था की शाखाएं स्थापित करना और भिक्षू निकालना।

(vii) समतावाद के उद्देश्यों एवं प्रचार के लिये वार्षिक, अर्द्धवार्षिक, मासिक, अर्द्ध मासिक, साप्ताहिक व दैनिक पत्रिकाएं निकालना तथा पुस्तक व पुस्तकाएं इत्यादि छपवाना

(viii) संस्था के उद्देश्यों की सफलता एवं प्रसार के लिए प्रत्येक नियमानुसार वैधानिक ढंग से सम्पति प्राप्त करना।

उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के निर्मित संस्थाप सदस्यों, सदस्य निकायों एवं आवन के कार्यों का समन्वय (coordination) कर सकती है।

परिचय

समतावाद के बानी (प्रवर्तक) आज के युग के सत्पुरूष पूज्य श्री सद्गुरूदेव महाराज मगत राम जी का जन्म शुभ गांव गंगोठिया ब्राह्मण, तहसील कटा, जिला रावलपिण्डी (पाकिस्तान) में एक किसान ब्राह्मण परिवार में मघर सं० १९६० तदनुसार २४ नवम्बर १९०३ ई० मंगलवार के दिन हुआ (परिनिर्वाण तिथि ४ फरवरी १९५४) । आपने अपने समता सिद्धान्तों में किसी ऐसी बात का उल्लेख नहीं किया जिसे उनके पूर्ववर्ती ऋषियों, संतों और सिद्धों ने न कहा हो। समता बहुत प्राचीन सिद्धान्त पर खड़ी है, लेकिन जीवन में इसका पालन सदा एक नयी धारा है। समता जीवन में लाने की चीज है। बाद-विवाद और दिमागी ऐयाशी इसका उददेश्य नहीं है।

समतावाद के द्वार हर मजहब, पंथ, सम्प्रदाय, जाति और देश के लोगों के लिए समान रूप से बने हैं। यह बात साम तोर पर जाननी योग्य है कि समतावाद कोई मजहब, पंथ या गिरोह नहीं है बल्कि आध्यात्मिक उन्नति को साथ लेते हुए कुदरती जीवन जीने की चाह रखने वाले लोगों का सार्वमी- मिक आध्यात्मिक संगठन मात्र है। हर व्यक्ति अपना परम्परागत विश्वास या मजहब छोड़े बिना इसमें आकर अपनी.. आध्यात्मिक उन्नति का पूरा पूरा लाभ उठा सकता है।

समतावाद असली प्रेम और शान्ति प्राप्ति की संस्था (Institution) है। इसकी बुनियाद सादगी, सेवा और सत् पर खड़ी है। यह हर तरह के दिखावटी व बनावटी जीवन के विरुद्ध है।

समता सब मजहबों के प्रवर्तक सिद्धों, संतों की पूरी कद्र करती है। इसके अनुसार श्री राम, श्री कृष्ण, प्राचीन वैदिक ऋषि मुनी, गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी, नानक, कबीर, जरोदस्त, दादू, फरीद, सहजोबाई, चरणदास, मीराबाई, रैदास, जानेश्वर महाराज, ईसामसीह, हजरत मूसा, हजरत् इब्राहीम, हजरत मोहम्मद, महात्मा सुकरात्, बुल्लेशाह, महर्षि रमण, श्री रामकृष्ण परमहंस आदि सत्पुरुष सबके सब परम आत्मस्थिति को पहुंचे हुए थे। हर समतावादी प्रेमो इन सत् पुरुषों का समान रूप से पूरा-पूरा सम्मान करता है एवं श्रद्धा रखते हुए उनको नीति को सुनने एवं उस पर चलने का उत्साह रखता है।

समतावाद के अनुसार हर जीव अपनी सन्तुष्टि तथा शान्ति के लिये दिन-रात प्रयत्न कर रहा है। मन की तृप्ति ही जीवन का एक मात्र उद्देश्य है। समतावाद् इस असूल को मनुष्य तक ही सीमित न रख कर शान्ति व सन्तुष्टि की अपार इच्छा को पशुओं, पेड़ पौधों तथा जड़ पदार्थों, जैसे चांद, सूरज, तारों, चट्टानों तथा नदियों एवं समुद्र में एक समान देखता है। अर्थात् सृष्टि का कण-कण शान्ति र सन्तुष्टि के लिये लगातार हर समय यन्न प्रयत्न में लगा हुआ है। स्वयं श्री सद् गुरु देव कहा करते हैं "नदियां अपने सन्तोष के लिये अपने

किनारों के साथ टकरा कर रह जाती है"

इसी शान्ति व सन्तोष प्राप्ति हेतु सभी जीव कोटि इन्द्रियों के भोगों में दिन-रात मोहित हो रही है। नाना प्रकार के जीवन सामान और सामग्री को इक्ट्ठा करके मनुष्य अपने आपको भाग्यशाली मानता है। लेकिन दरअस्ल में सचाई तो यह है कि ज्यों-ज्यों वह इन्द्रियों के भोगों में अधिक गलतान होता है उसका असन्तोष और अशान्ति ज्यादा से ज्यादा उसी मात्रा में बढ़ती जाती है। यह बात हम सब अपनी रोज की जीवन- चर्या में अनुभव करते हैं।

इस स्थिति को देख कर समतावाद इस सिद्धान्त पर पहुंचता है और उसका यह आखीरी फैसला है कि इन्द्रियों के भोग और भौतिक पदार्थ अपने स्वभाव में अत्यन्त दुःख और कष्ट के कारण है। पहले तो इस शरीर को ही ले लो। यह सारे भोगों का भोग्ता है मगर साथ ही साथ पल-पल में नाश की तरफ कदम बढ़ा रहा है। दूसरे, ये सारे के सारे भोग पदार्थ भी नाशवान हैं। तीसरे, मनुष्य की इच्छाओं का कोई अन्त ही नहीं उसके मुकाबले में भोग-पदार्थ सीमित है। इन कारणों से राजा से लेकर एक तक अनपढ़ से लेकर विद्वान तक, हर छोटा बड़ा मनुष्य हर क्षण रजो-ओ-गम की भट्टी में जल रहा है। इस मूलभूत सिद्धान्त (बुनियादी असूल) में समतावाद सत्पुरुष महात्मा बुद्ध के समान ही विचार रखता है।

इस बारे में समतावाद आधुनिक पश्चिमी विचारकों से भिन्न है और उनके दृष्टिकोण की नहीं मानता। वह साम्यवाद

के प्रणेता का मास के इस सिद्धान्त को नहीं मानता कि मन केवल आर्थिक जरूरतों का पुतला है और इसकी सही पूर्ति हेतु समाजवाद के विकसित रूप में कोई राज प्रथा नहीं रहेगी और लोगों के आपसी झगड़े और वर्ग संघर्ष खत्म हो जायेंगे और मनुष्य भोग पदार्थों को भोग करता हुआ पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हो जायेगा। समतावाद प्रसिद्ध विचारक स्पेन्सर की इस विचारधारा को भी अमान्य करता है कि दुनियां के इतिहास में कभी ऐसा समय जावेगा जब मानव अपने सामा जिक जीवन में, किसी राज्य प्रणाली के बिना, एक मात्र पारस्परिक सहयोग और भाई चारे को अपनाकर, पूर्ण तौर पर सन्तुष्ट हो जावेगा। समतावाद प्रख्यात मनोवैज्ञानिक फायड के मत को भी स्वीकार नहीं करता जो मानव जीवन का आधार केवल काम वासना और उसकी पूति में देखता है। समतावाद जर्मनी विचारक नोट **(Nietzsche)** के मत को भी अमान्य करता है जिसके अनुसार शाक्ति और उसका संचय ही मनुष्य का एक मात्र उद्देश्य है। दरअस्ल में समतावाद शान्ति और सन्तुष्टि के बारे में भौतिक ज्ञान विज्ञान की उन्नति द्वारा इसको प्राप्त किये जाने के यत्न प्रयत्न को बड़ी निराशा की दृष्टि से देखता है और यह मानता है कि इन लोगों की बुनियादी बात ही गलत है। असल शान्ति और सन्तुष्टि हमें बाहर जगत् से प्राप्त होने वाली नहीं है इसके लिये हमे अन्त- जगत में दाखिल होकर इसे प्राप्त करना होगा।

जीव के खेद और बेचनी का कारण बाहर के जगत को भौतिक वस्तुओं को प्राप्त व अप्राप्त अवस्था नहीं बल्कि उसका अपना अह कार है। जीव में 'अह' का बीज ही एक ऐसी वस्तु

है जो उसे जन्म मरण के में घूमता हुआ उसे हर तरह से दुःखित कर रहा है। समतावाद भारत की पुरातन परम्परा की पुष्टि करता है जिसके अनुसार 'अम्मा' संसार और दुःख का मूलभूत कारण है।

समतावाद मानता है कि अहंकार करके ही यह भौतिक शरीर कायमी में आता है, और इस शरीर करके ही सृष्टि है, अहकार ग्रसित जीव कभी भी पूर्ण शान्ति और सन्तुष्टि प्राप्त नहीं कर सकता। अहंकार ही सबसे बड़ी जड़ना और मता है।

ज्यों ज्यों जीव अपने अहंकार की जड़ को काटता है उसके लिये अन्नत आनन्द और ज्ञान लोक के दरवाजे खुल जात है। इसी अवस्था का नाम, समता के अनुसार मोक्ष या निर्वाण पद है । इस अवस्था प्राप्त करने पर जीवन की सब दौड़-धूप सत्म हो जाती है। हर देहधारी जीव की अंतिम चाहना ये हा है। समतावाद में अहकार रहित होने का मतलब है कि अपने अह को उस परम-शक्ति को समर्पण कर देना और हर क्षण अपने आपको तन, मन और धन से सारी जगती को उस महा- शक्ति का स्वरूप जान कर सेवा में समर्पित कर देना। श्री सद गुरुदेव सतपुरुष पूज्य मंगत राम जी के शब्दों में "समता-ज्ञान का विशेष साधन यह है कि सब जगत को एक ईश्वर का प्रकाश समझ कर तन, मन, धन से निष्काम भाव और निराभिमान होकर सेवा करनी"।

शान्ति और सन्तुष्टि पाने के लिये जीव ने इन्द्रियों क भोगों का गलत रास्ता पकड़ा हुआ है। इंगलैंड के प्रसिद्ध

विचारक वैरथम और मिल के मत से जीवन का उद्देश्य अपनी ओं की पूर्ति है। परन्तु समतावाद इच्छाओं को ही सारे झगड़े की जड़ मानता है। इच्छाओं के पूर्ण अभाव से ही परम शान्ति और पूर्ण सन्तुष्टि संभव है, और इच्छाओं का अभाव कर्तापन के अभाव से हो सम्भव है।

इस अकर्तापन की अवस्था को पाने के लिये समतावाद पांच बुनियादी असूलों को स्वीकार करता है- **(1)** सादगी **(2)** सेवा **(3)** सत् **(4)** सत्संग एवं **(5)** सत्स्मरण।

समतावाद यह भी स्वीकार करता है कि मनुष्य अपने घर-गृहस्थ में रह कर भी इन असूलों का पालन करता हुआ पूर्ण-रुपेण सफल हो सकता है।

साधन रूप में समतावाद ज्ञानयोग, भक्तियोग एवं कर्मयोग- इन तीनों की महत्ता को स्वीकार करता है। मगर इसका ज्यादा जोर राजयोग पर है। ज्ञानयोग भक्तियोग एव कर्मयोग इसकी सहायता के लिए हैं। राजयोग का साधन अधिकारी- जिज्ञासू को पूर्ण स्थिति प्राप्त आत्म-अनुभवी सत्- पुरुष से ही उपलब्ध हो सकता है। इसकी आम चर्चा लोगों मैं ठीक नहीं है। जो अश्रद्धा पैदा करती है। श्री कृष्ण ने भी महाभाग अर्जुन को गीता में उपदेश दिया है कि श्रद्धा रहित लोगों के आगे आध्यात्मिक चर्चा न करें। और इस परम साधन को प्राप्त करने के लिए तुम्हें किसी तत्वदर्शी ज्ञानी सत्पुरुष की शरण में जाकर बड़ी श्रद्धा, विनती और सेवा द्वारा यह परम ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। जो साधन प्राप्त हो उसे बड़ी श्रद्धा के साथ कमाई करने से यह परम-तत्व

प्राप्त किया जा सकता है।" अनाधिकारी एवं लोगों के हाथों में पवित्र से पवित्र सिद्धान्त भी दूषित हो जाता और उससे समाज का अहित होता है इस करके ही सत्पुरुष ने इस आत्म-साधन को आम चर्चा का विषय बनाकर गुरू ही रक्खा है।

समतावाद किसी भी तरह के गुरुडम, महताई, पुरी-हिताई व गुरु गद्दी में विश्वास नहीं रखता।

समतावाद की मान्यता है कि इन्द्रियज्ञान एवं बौद्धिक- ज्ञान मनुष्य को चरम सत्य तक नहीं पहुंचा सकते । भौतिक- विज्ञान और दर्शन भी परमार्थ की दृष्टि से अपने अन्तिम गोल तक मनुष्य को से जाने में असमर्थ है। समतावाद को पश्चिमी प्लेटो, हेगल और रेस्सल जैसे विचारकों के ये सिद्धान्त भी अमान्य है कि "बुद्धि उस परम अवस्था को बोध करने में समर्थ है।" जिस करके बुद्धि का असतित्व है उस परम- प्रकाश मयी आत्मा को केवल अबोध और असोच होकर ही जाना जा सकता है। सच्चा ज्ञान केवल समाधि से ही होता है।

समतावाद वैदिक आर्य सनातन धर्म के आवागवन, कर्म सिद्धान्त, यम नियम आदि आदि पर पूरा विश्वास रखता है।

समतावाद का विश्वास है कि आत्म-पूजा ही सर्वोच्य एवं एक मात्र सही पूजा है। इसके अलावा दीगर भक्ति, कर्मकाण्ड व और दूसरे तरीके यद्यपि मन को आरजी तौर पर अपनी अपनी तरह से थोड़ा बहुत पवित्र करने वाले हो सकते हैं लेकिन सही सिद्धान्त को जाने बगैर सव अन्धकार-परस्ती ही है।

समतावाद समाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक सिद्धान्तों को तभी तक ठीक मानती है, जब तक उनका आधार आध्या त्मिक हो। सादी भाषा में कहें तो वे मानव की इच्छाओं को मर्यादा में रखने में सहायक होवे । इसके लिए वह राजा के राजबल को विद्वानों के विचारवल को और तपस्वी साधु पुरुषों के तपोबल को भी आवाहन करता है।

समतावाद प्रत्येक ऐसी राज्य पद्धति को गलत मानता है जिसमें आम जनता का आचार बिगड़ने का भय हो और वासना और लोभ की मात्रा में बढ़ोत्तरी होवे ।

समतावाद का सिद्धान्त किसी भी तरह की राजनतिक सत्ता की प्राप्ति का महत्वाकांक्षी नहीं है लेकिन अपने अनुसार सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का हल चाहता है। समता- वाद का किसी भी राजनैतिक अथवा सामाजिक आन्दोलन से किसी भी तरह का संबन्ध नहीं है। इसका कार्य अपने सदस्यों की आध्यात्मिक उन्नति और आम जनता के नैतिक उत्थान तक ही सीमित है ।

समतावाद के अनुसार आजकल की भौतिकवादी फैसन- प्रस्ती की अन्धी दौड़ एवं आवश्कताओं की अधिकता बढ़ाने वाला दृष्टि कोण समाज के लिए बहुत हानिकर है।

समतावाद मानव के मानव पर अत्याचार को पाप समझता है । अतः उसके अनुसार मौजूदा वर्ण व्यवस्था व तछात का भेद-भाव समाज के लिए घातक है।

समतावाद प्रेम, उदारता, सहनशीलता, और मानसिक संयम पर बड़ा जोर देता है और इसके लिए एक शान्तिमय आन्दोलन के लिए जनता के उत्थान हेतु सर्वदा प्रयत्नशील है।

समता तत्व

पूर्ण शांति, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण स्थिति, पूर्ण पुरुषार्थ, पूर्ण afa और मनुष्य जन्म की पूर्ण अनुभवता परम आनन्द केवल समता ही है।

समता-तत्व चैतन्य प्रकाश अनादि है। इस वास्ते सबको लाजिम है कि इस आनन्द को प्राप्त करें।

समता ईश्वरीय शक्ति का यथार्थ स्वरुप और गुण है। समता स्वरुप ईश्वरीय सत्ता सदैव काल एक रस होकर विचरती है। किसी वस्तु का विखेप (विक्षेप) उसको स्पर्श नहीं कर सकता यानि त्रिकाल आनन्द-स्वरुप है। इसी समता-भाव को जब जीव अपने अन्तर - विषय अनुभव करता है, तब उसके सब कर्म-बन्धन नाश हो जाते हैं और अचल शान्ति को प्राप्त होता है।

सर्व व्यापक एक ईश्वर की सत्ता एक रस, एक-भाव करके सब चौरासी लाख जीवों में विचर रहो है जिस वक्त उस ईश्वर का यथार्थ स्मरण और यथार्थ प्रेम प्रकट होता है, तब समता-ज्ञान यानि सर्व-भाव में एक-भाव का विचार करना प्रकट होता है।

समता-तत्व के पूर्ण मायने एकता, मुसावात यानि एक भाव की तहकीकात करना। ममता रुपी माया विकार, जो कि

पल-पल स्यानात यानि वृद्धि को भरमाता है, बगैर समता- तत्व के समझने के कभी नाश नहीं होता।

समता-याक्ति अनुभव करके कुल महापुरुषों ने निजात (मुक्ति) हासिल की और लोगों को राहते अब्दी (नित्य शांति) सिखलाई।

समता ही असली खुशी है जो हर एक जीव अन्तर से चाहता है।

समता का ही जहूर (प्रकाश) कुल दुनिया है, सब पदार्थ एक दूसरे के प्रेम से बड़े हैं।

समता ही आनन्द है, नित्य है, निर्वाण है, सब की बुद्धि में इसकी चमक है। इस वास्ते इस प्रकाश की तहकीकात (खोज) करना हो दिव्य-कर्म और सत्पुरुषार्थ है।

समता ही अनादि विद्या है, जो हर वक्त एक ही भाव में स्थित है और जो हासिल (प्राप्त) करता है उसको वह ही रंग कर देती है।

समता का असली अर्थ यह है कि हर हालत में एक रस होना, ग्रहण और त्याग की कामना से मुक्ति हासिल करनी, यह ही ईश्वर की भक्ति और मुक्ति है।

समता स्वरुप असली ब्रह्म शब्द हैं, जो हर हालत में पूर्ण है और सब के अन्तर व्याप रहा है। शुद्ध बुद्धि और एकाग्र मन विचार में आ सकता है। नित हो कोशिश

करनी चाहिए उस अविनाशी तत्व को जानने की।

अहंकार से रहित अवस्था समता का स्वरुप है। इस वास्ते बड़ी से बड़ी कोशिश करके उस आनन्द को प्राप्त होव और दुनिया के वाद-विवाद से मुखलसी (छटकारा) हासिल करें |

सद्वाणी-

सत सरूप अपार अनामी।
अच्छर अविगत सरव अन्तरयामी |
जुग-जुग आद आप विस्मादी।
नित सम-रूप आगम अगाधी ||
अलख अद्वैत नहीं पारावारा।
अपनी माया का रचा पसारा ॥
तीन काल आनन्द सरूप।
घाट वाघ ना पावे अनूप ॥
आप अजन्मा सरब अलेप |
माया रूप वटाए अनेक ||
सरव कला पूरन अविनाश।
सरब जियों के अन्तरगत वास ॥
नाना नाम घर सिध मुनी घ्याएँ।
अखय-पुरूष का पार ना पाए।
सरव जीवों की बनत बनावें।
सरब नियारा आप रहावे ||
सरख भीतर रहे आप समाई।
सरव भेद जानत जानाई ॥

सरब से ऊँच घाम विराजे ।

कोट ब्रह्मण्ड पल माई निवाजे ॥

सरब आधार अखण्ड सुखराशी ।

अन्तरयामी भज तत्त अविनासी ॥

सरब तेज बल को नित धारी।

सरब ज्ञान का आप गुणकारी ॥

एक तृण की महिमा अपारी ।

कौन लखे गत पार-मुरारी ॥

सब कुछ धारे अपने माहीं ।

सरब से न्यारा अखण्ड सुख थांई ॥

जीवन रूप सो आप समाई |

भांत भांत रचना दिखलाई ॥

पांच तत्त का चकर चलाई ।

करम रहित रह्या अब समाई ||

अनन्त शकत सतरूप को, बारमबार विचार |

'मंगत' सो निजरूप है, जल-थल में भरतार ॥

निरमल धाम परापत पायो, अलख शब्द अवनाशी ।

'मंगत' समता-तत्त पछाना, सब दुर्मत छाया नासी ॥

समता-ज्ञान

समता-ज्ञान सत्कर्म, सत्विचार, शुद्ध प्रहार, सत्विश्वास, झुंड से वैराग्य और सत् में अनुराग पैदा करने से हासिल होता है।

समता-ज्ञान को जो प्राप्त होवे उसके अन्दर ये परम गुरण प्रकाश करते हैं-निष्कामता, निर्मानता, उदासीनता, निः- चलता (निश्चलना), परोपकार और सम-भाव में यत्न । ये ही परमानन्द की रोशनी की किरण हैं।"

समता-ज्ञान के बगैर कभी बुद्धि शुद्ध नहीं होती और न ही कर्म के झगड़ों से छूट सकती है। इस वास्ते मनुष्य जिन्दगी का परम धर्म समता विचार, समता-साधन, समतास्थिति है।

समता-ज्ञान शरीर अभिमान और कर्म अभिमान के छोड़ने से प्राप्त होता है।

समता-ज्ञान की असली परस्तिश (पूजा) यह है कि एक ईश्वर को सर्वव्यापक देखना, किसी से वैर न करना, आचार को शुद्ध करना, खुदगर्जी की बू को निकालना, सिर्फ एक ईश्वर का भरोसा रखना, उसी की इबादत (उपासना) करनी, उसी के नाम पर दान करना, उसी को आज्ञा मानकर उसी के सर्व जगत की सेवा करनी ।

समता-ज्ञान कोई फिर्का या मजहब नहीं है, बल्कि हर एक

मजहब की बुनियादी रोशनी है। यह ही असली ज्ञान अना- नियत यानि खुदी को नाश करने वाला है और अखन्ड शान्ति यानि ईश्वर प्राप्ति देता है।

जो एक ईश्वर को सब में नहीं देखता वह ईश्वर हस्ती से मुनकिर (इन्कारी) है। जो प्रेम करके दुःखी जीवों की सेवा नहीं करता वह ईश्वर के हुक्म से मुनकिर है। जब माया का अभिमान प्रचन्ड होता है तब खुदगर्जी और खुदपसन्दी में गिरफ्तार होकर अपनी इखलाकी जिन्दगी (चारित्रिक जीवन) को नाश कर देता है।

समता-ज्ञान फिकीपरस्ती, मुल्कपरस्ती, कुलजात परस्ती से बालातर है। फिकीपरस्ती में भी खुदगर्जी है; मुल्क परस्ती में भी ममता है, कुलजात का अभिमान भी कैद है।

समता-ज्ञान का विशेष साधन यह है कि सब जगत को एक ईश्वर का प्रकाश समझकर तन, मन, धन से निष्काम भाव और निराभिमान होकर सेवा करनी।

सद्वारणी-

होए मसीह जापता, प्रभु पिता रूप सम प्यार।
घनन भगत घट उपजी, दरसा रूप प्रपार ||
आन जिसम निररणा किया, जिसम से भया प्रतीत।
जान तत्त पछान के, सदा रहे रमनीक ||
राग द्वेष संभा गया, करम विकार विनास।
सत्स्वरूप से मेला भया, जीव भया निरवास ॥

ऐसे जापे नाम को, गुरणी मोहम्मद मीत।
मित्तर सम प्रभु जान के, राखे दृढ़ परतीत ॥
बीच रजाई त्यागिया, सकलो करम विकार।
दीन आजजी में रमा, नफस दा किया शिकार ॥
बीच रियाजत नित रहे, साहिब पर विश्वास।
अधिक प्रेम प्रगट हुआ, प्राय मिला अवनास ॥

परम त्यागी बुद्ध भया, सो तत्त जापे निर्वाण।
काल करम संशा गया, बुद्ध निश्चल परवाण |

दुख सुख प्राकृत के, व्यापे नाहीं कोए।
सार फल परगट भई, करम बन्ध सब खोए |
सबसे परे प्रानन्द रूप, जाना इक परकाश |
तिसमें ही विरती लगी, पाया मोख निवास ||
सार तत्त सत् जान के, नित रहे परवीन।
ऐसे रूप भगवान का, गुणी बुद्ध लियो चीन ।।

परमारथ को सोधता, रिखबदेव इस भांत।
मन करम और वासना, सकले द्वन्द भरन्त ॥
तिसते परे एक वस्त है, नित हो शूनिकार।
सकल से न्यारा सो रहे अखण्ड तत्त निरंकार ॥
तिसमें बुद्धि जब गई, तब पावे विसराम।
जैनमत परगट कियो, दे साचा पैगाम ||

जरदस्त विचारिया, अगनी रूप भगवान।
काल करम को भसम करे, बुद्धि दे कल्याण ॥
तिसमें ही नित मगन रहे, आसा विघन निवार।
केवल अगनी ब्रह्म को, नित राखे मन धार ॥
बगिन पुजावे जगत में, कियो यह विचार।
मत पारसी परगट किया, देके ज्ञान आधार ॥

सब रिसियन की सार सुन, अध्यातम विचार।
वसत एक ही पूजते, नाना जुगत मन धार ।।
सबकी सार को सुन के, छड़ कीजे विश्वास।
'मंगत' विचारे नाम में, कटे करम की फांस ||

समता-धर्म

समता धर्म यानि बुद्धि का समभाव में स्थित होजाना, तमाम कामना धौर कल्पना से आजाद हो जाना, अपने निज- स्वरूप यानि श्रात्मानन्द में प्रवेश कर जाना, जन्म और मरण के भय से मुक्त होकर अपने अन्तर विषय सत स्वरूप में लोन हो जाना यह अवस्था ही पूर्ण धर्म का स्वरूप है। और सब महापुरुषों की यह ही इन्तहाई तहकीकात (पूर्ण खोज) है। उन्होंने इस प्रवस्था को प्राप्त होने के खातिर अनेक प्रकार की साधना को प्रगट करके धर्म स्वरूप को प्रकाश किया, यानि सत्कर्म सत् विचार, सत् विश्वास, सत् पुरुषार्थ सत्संग और धन-मुक्त-भेद का निर्णय किया। इस प्रकार जो धर्म के स्वरूप को जानने वाला है और हृदय से इन शुभ गुणों का निदिध्यासी भी है, वह ही समता-धर्म अखण्ड शान्ति को प्राप्त होवेगा।

शरीर मन और बुद्धि को पवित्र करना ही असली धर्म का जानना है। अगर ऐसी साधना को प्राप्त नहीं हुआ तो वह धर्म के असली स्वरूप को न पहचान सकता है और न ही असल शान्ति को प्राप्त हो सकता है। सब महापुरुषों का यथार्थ उपदेश इन ही हालतों की शुद्धि का साधन बतलाता है। जो कायर और स्वार्थवादी अपनी कल्यारण तो कर नहीं सकते वे पन्थ भेद मीर कई प्रकार के वाद-विवाद में लगे रहते हैं। वह न खुद शान्ति को प्राप्त कर सकते हैं, और न ही साधारण जीवों को शान्ति की तरफ जाने देते हैं। यह ग्रन्धकारमयी पत्थ भेद का

झगड़ा पसली प्रजान है। और समता शान्ति को किसी सूरत में प्राप्त होने नहीं देता ।

जीवों को अपनी कल्याण की खातिर धर्म स्वरूप को धारणा है न कि वाद-विवाद और लोक दिखलावे की खातिर । जिस वक्त तमाम कमजोरियों से पवित्र हो जावे यानि समता प्रानन्द में लीन हो जावे उसी वक्त वह गुणी पुरुष जीवों की कल्पारण की खातिर अपने पवित्र जीवन को तमाम जनता को सेवा में भेंट करे। यह ही रास्ता गुरुग्रों, पीरों और अवतारों का है।

धर्म का स्वरूप हर पहलू में सही जानना चाहिये। जीव की कल्याण समता प्राप्ति से है। बगैर समता की तहकीकात के कभी खुशी हासिल नहीं हो सकती। यह निश्चय करके विचार करना चाहिये। हर एक चीज समता के बल से कायम है जो चीज समता से हीन हो जाती है वह उस स्वरूप से मिट जाती है। यह ही ईश्वर शक्ति का चमत्कार है। हर वक्त अपने प्रन्दर सही तालाश करनी चाहिये ।

हर एक के कालिब के अन्दर मालिक कुल (ईश्वर) रोशन हो रहा है। खुदी के प्राजाब से जीव उसको जान नहीं सकता । खुदी के अवर (छुटकारा पाने की खातिर धर्म या ईमान है। जिसको हासिल करके असली खुशी यानि मालिके कुल का मिलाप हासिल होता है। यह ही समता पद है। तमाम रंजो- गम से मुक्त होकर जीव पूर्ण रूप हो जाता है। तमाम कामिल बजुर्गों का फिलसफ़ा इस जगह श्राकर खत्म हुआ है।

(तमाम पन्थ, भेद और मजहबी झगड़ों को छोड़ कर अपनी पात्मिक उन्नति करनी चाहिए। यानी आचार विचार - को पवित्र करके अपने जीवन स्वरूप की तालाश करनी चाहिए तमाम शरीर की शक्ति उस मालिके कुल से जाननी चाहिए और हर वक्त अपने मन को एकाग्र करके परमेश्वर का सिमरण करना चाहिए, और अपने अन्तर विषय उस प्रकाशमयी जीवन शक्ति को अनुभव करना चाहिए। खुशी गमी सब उसकी प्राज्ञा से समझ कर सावधान रहना चाहिए। ऐसा दृढ़ निश्चय हासिल होने से मन सब भ्रमों को छोड़ कर सत्-शब्द ब्रह्म स्वरूप में लीन हो जाता है, जो समता धर्म का पूर्ण रूप है।

हर वक्त कर्म गति का विचार करना चाहिए। पाप कर्मों से मन को रोकना चाहिए। सत्संग द्वारा अपने मन को धर्म परायण बनाना चाहिए। निज स्वार्थ को त्याग कर एक ईश्वर की भावि में निश्चित होना चाहिए। हर घड़ी, हर लमह उस मालिके कुल की याद करनी चाहिए। दुःखी अनाथों और अशक्त पुरुषों की यथा शक्ति सेवा करनी चाहिए। कर्ता हर्ता सर्व स्वामी नारायण का पूर्ण विश्वासी होकर मार्ग धर्म में निश्चल होना चाहिए। ऐसी भावना ही सब पापों के नाश करने वाली है और धर्म का पूर्ण स्वरूप है। जो नित् ही नित् अपने मन को सत् मार्ग में लगाए रखता है वह ही धर्मात्मा है ।

एक ईश्वर को कुल दुनिया का आधार मानना और नित धानन्द स्वरूप जानना और हर एक के अन्दर उसका प्रकाश देखना, तमाम कर्मों के फल की वासना ईश्वर निमित त्याग करना, हर वक्त दीन भाव को धारण करना, सब जीवों का

हितकारी होना, मन, वचन, कर्म सबका भला चाहना, अपने शरीर के मद को त्याग करना, हर एक गुणी पुरुष का सरकार करना, हर वक्त अपने जीवन उद्धार की खातिर यत्न धारण करना, नाशवान शरीर से जीवित में ही उपरस हो जाना और प्रात्मानन्द में हर वक्त मगन रहना यह धारणा ही असली धर्म है।

जिस पन्थ या मजहब में जो है वह अपनी जिन्दगी को सही असूलों (सिद्धान्त) पर ले जा कर राहते अब्दी (दिव्य- श्रानन्द) हासिल करें। यह अमली कोशिश उस मज़हब की और उसके पेशवाओं की हिदायत उसको हो रही है। अगर अपनी सफाई-कल्व (अन्तःकरण की शुद्धि) को छोड़ कर महज जाहिरी चिन्ह के इख्तियार (धारण करने से जो मजहबी लाफ मार रहा है, वह असली जाहिल (मूढ) है और अपने वजुर्गों की असली तालीम से नावाफिक है। वह कभी भी मालिके कुल के दरबार से सुखलाई हासिल नहीं कर सकेगा।

शरीर सम्बन्धी जो धर्म संस्कार हैं वे प्रारजी हैं। इन पर झगड़ा करना महज नादानी है। असली धर्म जिससे मन पवित्र होता है, जिस तरीके को इख्तियार करके मन ईश्वर विश्वासी हो जावे और मान, मद, ईष्या से छुटकारा पाए, वह धर्म निजात (मुक्ति) के देने वाला है। शरीर सम्बन्धी संस् कार अलहदा अलहदा स्वरूप में हर एक मजहब के हैं। यह वक्त के मुताबिक महापुरुषों ने जाहिरी धर्म के चिन्ह कायम किये हैं। विचार तो इस बात का करना है कि जाहिरी तो किसी पन्थ के चिन्ह इख्तियार कर लिए मगर अन्दरूनी वह बिलकुल असलियत से बे-बहरा होकर मलीन कर्मों में विचर

रहा है वह किसी भी सूरत में धर्मवान नहीं हो सकता, स्वाहे शाहिरी कितने भी रूप क्यों न बनायें।

तमाम मजहब और पन्थ ये ही बताते हैं कि इस फना (नाशवान होने वाली दुनियां में प्राकर लाफानी हस्ती (श्रमर तत्व) की तहकीकात (खोज) करो जो असली खुशी है और रजोगम से बालातर है। अपनी ज़िन्दगी को हर वक्त साबिर- ओ-साकिन (वृत्ति रहित एवं पूर्ण) हालत की तरफ रागिव (उत्साहित) करना असली धर्म है और तमाम बजुर्गों का जीवन यह ही है।

सद्वारणी-

धरम का रूप चिन्ह ग्राकार कोई नाहीं।
समूह सतकरम सत धर्म लखाई ||
मजहब पन्थ के नहीं धरम आधार।
धरम सहित चले चकर संसार |
प्रभु की निर्मल रीती जोई ।।
धरम सरूप कहलाये सोई ॥
अनेक सरूप धरम ना धारी।
कल्याण का मारग एक लखारी ॥
पूरब पच्छिम का जीव जो होई।
कल्याण धरम सब एक लखोई ॥
जिस जुगत से जीव कामना जाये ।।
मारग धरम सो सत कहलाये ॥

आत्म धरम का निश्चय जोई।

साचा धरम पहचानो सोई ॥

धरम का रूप ना जीव कोई, ना कोई मजहब और पंथ।

मंगत यतन जो मुकत का, सो धरम कर यांचे ग्रन्थ ॥

सत आधार जीवन करें, सत में निश्चय पाये।

'मंगत' मिले सत् धरम तब, जब इच्छया रोग सब जाये ||

समता-मार्ग

समता-मार्ग में आत्म निश्चय और लोक सेवा मुख्य साधन है।

समता-मार्ग में सत्संग-सम्मेलन एक अधिक जरूरी नियम माना गया है, जिसमें हाजिर होकर अपनी कमजोरियों का विचार करना और सत्नयमों को अपनाने की खातिर यत्न करना लाजमी है।

समता मार्ग में देवी देवताओं और मूर्ति-पूजा उनके सही आदर्श अनुकूल गुरण व कर्म की धारणा असली पूजा मानी गई है।

समता मार्ग में सुबह व शाम ईश्वर सिमरण व ध्यान करना लाजमी निश्चित किया गया है।

समता मार्ग में जो पुस्तक ग्रात्म-सम्बन्धी विचार वाली हो उसका स्वाध्याय करना लाजमी है।

समता मार्ग में वक्त की पाबन्दी, नुमायश (दिखावा) और मुनशी (मादक व नशे वाली) चीजों से परहेज करना सार साधन माना गया है। यानि धर्मयुक्त काम में पूरी वक्त की पाबन्दी होवे। नुमायश-गाहों और नशों से मुखलसी (छुटकारा) हासिल करना।

समता-मार्ग में तीर्थयात्रा असली सत्संग ही माना गया है।

समता-मार्ग में एक ईश्वर विश्वास परमधर्म माना गया है, और किसी चीज का भरोसा करना दुमति है

समता-मार्ग में अपनी उन्नति का पूर्ण यत्न करना असली निश्चय है। किसी की गति करने का हक रखना और किसी को गति चाहना यह मन्द निश्चय है यानि सत्पुरूषों की हिदायत के मुताबिक अपने ग्रन्तः करण की शुद्धि करना परम सिद्धि है।

समता-मार्ग में निष्काम कर्म की साधना मुख्य यत्न है। यानि तमाम कर्मों को ईश्वर विखे (निमित) समर्पण करना और उसी की प्राज्ञा में दृढ़ विश्वासी होना । सकाम बुद्धि यानि कामना रखकर ईश्वर की शक्ति को छोड़कर देवी देवताओं और ग्रहों की पूजा करनी और याचना करनी बिलकुल मना है। प्रारब्ध कर्म को कोई शक्ति बदल नहीं सकती इस वास्ते ईश्वर विश्वास को छोड़कर दूसरे का भरोसा रखना कल्याण को देने वाला नहीं है।

समता-मार्ग में हर एक अधिकारी की यथायोग्य सेवा करनी लाजमी है। लोक दिखलावे की खातिर प्रपंच बिलकुल मना है।

समता मार्ग में आत्मचिन्तन करना और सत्कर्म को धारण करता सार भक्ति है।

समता की तालीम ग्राम हिन्दू सम्प्रदायों में और दीगर मज़ाहब में इस तरह है जिस तरह माला के मनकों में धागा ।

समता की तालीम हर एक मजहब की परस्तिशगाह (धर्म स्थान व उपासना स्थल) में जाने की इजाजत देती है, ताकि उस जगह जाकर सही वाक्यात को हासिल करें और अपने सत्कग में भी तमाम भाव की जनता को प्रेम पूर्वक स्वागत करने की और सत् विचार सुनाने की इजाजत देती

समता की तालिम इखलाकी जिन्दगी (चारित्रिक जीवन) हानी जिन्दगी (माध्यात्मिक जीवन) और देश-भक्ति में हर तरह से कुर्बानी करके अपने जीवन को प्रमली बनाना सिखलाती हैं।

समता की तालीम तमाम इखलाकी बजुगों (चरित्रवान महापुरूषों) के जीवन आदर्श का विचार सुनना और उस पर कारबन्द (चलना) होना सिखलाती है।

समता मार्ग में निष्काम भाव से सत्कर्म की धारणा असली कल्याण कारी यत्न माना गया है। तमाम गुणी पुरुषों का मार्ग यह ही है।

(1) शुद्ध- प्राचरण-जो नित ही शुद्ध आचरण में प्रवीण है और गुरु भक्त है, वह सहज ही निर्वास गति को प्राप्त हो सकता है। कर्मों की शुद्धता हो परम विवेक है। तीर्थ, यज्ञ, दान, तप और सत्संग यदि साधनों के धारण करने का सार यह ही है कि शुद्ध प्राचरण प्राप्त होवे। यह मन बड़ा विकारी है, इस वास्ते नित्य ही सत् साधना से इसको स्तंभित करना चाहिये। सत्

गुणों का विचार ही मन को शान्ति देने वाला है, और बुद्धि को बलवान करने वाला है।

हर वक्त शरीर की अन्तिम दशा का विचार, अपने मानसिक दोषों की प्रशान्ति का विचार और दृढ़ अनुरोग निवास पद को प्राप्ति का यह निश्चय ही शुद्ध आचरण के देने वाला है।

तन, मन और धन के मद में हर वक्त जीव ग्रासक्त रहता है, और प्रति कामना संयुक्त होकर कई प्रकार के अतथिक कर्म करता है, और प्रति दुखित होता है। इस वास्ते निष्काम कर्म का मार्ग धारण करके अपने तन मन और धन से दूसरों का उद्धार करना ही सर्व कल्याण के देने वाला है। और यह हो यत्न शुद्ध आचरण का स्वरूप है।

(2) सत्कर्म

जो गुणी शुद्ध व्यवहार से धन को एकत्र करता है, और निष्काम भाव से पर मेवा में जो अर्पण करता है, वह ही कल्याण को प्राप्त हो सकता है।

जिसने अपने तन और मन को नित्य ही पवित्र किया है सत्कर्मों से, और नित्य ही सत्-मार्ग में निश्चय धारण किये हुए है, वह ही निर्माण होकर प्रात्म निश्चय को प्राप्त हो जाता है और शुद्ध प्राचरण के बल से सब विकारों पर जीत पाकर निर्भय सुख भविनाशी शब्द में लीन हो जाता है।

यह भवमार्ग अति ही कठिन है। नित्य ही शुद्ध आचरण को धारण करके अपने प्रापकी कल्याण करनी चाहिए।

जो दृढ़ निश्चय से शुद्ध श्राचारी होकर ग्रन्तर्मुख साधना में प्रवीण हुआ है, वह निर्मल विवेक के बल से आत्म साक्षात्कार परम-सिद्धि को सहज ही प्राप्त हो जाता है।

ऐसी निर्मल साधना करने वाले के वास्ते सूक्ष्म ग्राहार पवित्र स्वरूप में ग्रहण करना चाहिये। और पवित्र व्यवहार जीवन निर्वाह की खातिर, और सत्सेवा पवित्र निश्चय से, और समय की पाबन्दी करके स्वार्थ कर्म में बरतना और समय पर निश्चल चित्त करके सत् स्वरूप में प्रारूढ़ होना - ऐसा यत्न जो पूर्ण नियम से दिवस रैन धारण करता है, वह ही सत्-प्रभ्यासी स्वरूप अनुभव को प्राप्त हो जाता है।

(3) सत् – विचार

इस जीवन यात्रा के यथार्थ लाभ को प्राप्त करना ही परम उच्चता है। असत् शरीर जिसकी शक्ति से सरजीवित हुआ है और तमाम तात्विक आकार सृष्टि जिसके बल से खड़ी है, ऐसे उस मद्दा-प्रभु का स्मरण और उसकी निर्मल श्राज्ञा पालन करते 'हुए अपनी जीवन यात्रा को जो व्यतीत करता है, वह ही अधिक स्वार्थ की अग्नि से ठंडा होकर निर्मल त्याग को प्राप्त होता है।

(4) सत्-निश्चय

अपने पवित्र निश्चय से एक प्रभु के परायण होकर अपने

सुख को जो दूसरों के दुःखों में समर्पण करता है, और हृदय से नित्य ही सत्-स्वरूप का निदिध्यासन करता है, और दिन- भंगुर जीवन यात्रा में नित्य हो उदास रहता है, मान-अपमान लाभ-हानि सुख-दुःख में जो धीरजवान रहता है-ऐसी निर्मम स्थिति वाला पुरुष ही असली पवित्रता के भेद को जानने वाला है और उसका जीवन कर्तव्य परम कल्याणकारी है।

प्रभु भावी पर जिसने दृढ़ विश्वास पाया है और सब कुछ प्रभु याज्ञा में जो देखता है, तमाम संसार उसी एक प्रभु की लीला जो विचार करता है और परम श्रद्धा से अन्तर्गत विखे नाम जो निदिध्यास करता है वह सत् विश्वासी पुरुष श्रात्म सिद्धि को प्राप्त करके निर्वाणपद में लीन हो जाता है जो चल प्रछेद और अनादि हैं।

स्वायं यगिन से जिसने छूट पाई है और परमार्थ में जो निश्चय हुआ है तमाम जीवों के दुःख को जो अपना दुःख जानता है और नित्य ही सत्श्रद्धा से अपना सुख जो औरों के दुःख में जो त्याग करता है। - वह ही गम्भीर बुद्धि वाला पुरुष - निर्मल भावना से ग्रात्म निश्चय को प्राप्त करके अपने तमाम विकारों पर जीत पा लेता है, और सत्श्रद्धा से केवल प्रभु- परायण होकर जीवन व्यतीत करता है। उसी शुद्ध प्राचरण वाले पुरुष ने संसार में असली जीवन को जाना है। यानि अपने आपको निश्चय से मुसाफिर जानकर अन्तर से एक प्रभु में हो मगन रहना है। वह हो परम तत्ववेत्ता है, यानि संसार में विचरते हुए प्रन्तर से निलेप रहता है। उसी ने वासना रूपी अग्नि को भस्म किया है।

(5) सत् विश्वास

जिसने नित्य ही अविनाशी सुख प्राप्त करने का विश्वास चित्त में धारण किया है, और तमाम शारीरिक सुखों को चित से त्याग कर दिया है, एक प्रभु ग्राधार पर ही जिसने अपना जीवन स्थिर रखा है, वह ही पढ़ निश्चय वाला परम विवेकी अपने अन्तरविसे सत्-स्वरूप को अनुभव कर सकता है जो धानन्द का भंडार है।

नित्य ही निर्मल यत्न से अपने श्रापको परोपकार के मार्ग में लगाना चाहिये, जिससे सब दोष नाश होकर एक ग्रात्म- परायणता प्राप्त होवे।

(6) सत् पुरुषार्थ

सर्व सिद्धि, सर्वशक्ति, पूर्ण शुद्धि और परम पुरुषार्थ मनुष्य जीवन के वास्ते यह ही है, कि एक परम शक्ति जीवन स्वरूप ग्रात्मा के विश्वास को धारण करके, और नित्य ही मलीन वासनाओं को त्याग करके, शुद्ध श्राचरण, शुद्ध विचार और परम अनुराग ईश्वर परायणता का दृढ़ करके, सत् नियमों में अपने जीवन को लोन करें, यानि अपने अधिक स्वार्थ को त्याग करके नित्य ही निर्मल ईश्वर विश्वास, पर-हित श्रीर परोपकार में निष्काम भाव से विचरें ऐसा जीवन ही सर्व कल्याणकारी है।

अधिक पुरूषार्थ से अपनी जीवन उन्नति का निर्मल नियम धारण करना चाहिये, जिससे मानसिक दोषों से पवित्रता

प्राप्त करके सत्-पद अविनाशी स्वरूप में स्थिति प्राप्त होवे, जिस अवस्था की वास्तव में सबको चाहना बनी हुई है। इस मार्ग संसार में सद और पवित्र जीवन की स्थिति की खातिर जो यत्न करता है और अपने मानसिक विकारों के निरोध करने में जो प्रवीण है, वह हो परम विवेकी सत्-पद प्राप्त करके परम प्रानन्दित होता है।

उसका निर्मल पुरुषार्थ परम यादर्श स्वरूप है।

पवित्र जीवन

शरीर रूपी संसार में यह खास शक्तियां नित्य ही काम कर रही हैं और इन हो शक्तियों के अनुकूल काम करने का स्वरूप जीवन है-पांच ज्ञान इन्द्रियां, पांच कर्म इन्द्रियों, मन, बुद्धि और प्राण।

ज्ञान और कर्म इन्द्रियों के भोगों की चेष्टा को मनन करने वाली शक्ति को मन कहते हैं। और मन के दोषों को अच्छा या बुरा समझने वाली शक्ति को बुद्धि कहते हैं, यानि बुद्धि की समझ के मुताबिक ही मन दौड़ता है और मन की दौड़ के मुताबिक ही इन्द्रियाँ कर्म करती हैं। इस वास्ते इन्द्रियों के कर्म अनुकूल या प्रतिकूल का होना बुद्धि की पवित्रता पर मुनहसिर (आधारित) है जितनी बुद्धि निर्मल होती है, उतनी ही इन्द्रियों द्वारा निर्मल कर्म करके सत् शान्ति को प्राप्त होती है, और जितनी बुद्धि मलिन होती है, उतनी ही इन्द्रियों द्वारा मलीन कर्म करके नित्य प्रशान्त रहती है। इस वास्ते तमाम

जीवन का आधार बुद्धि की पवित्रता के मुताबिक है, और बुद्धि की पवित्रता को ही असली पवित्रता कहते हैं।

बुद्धि की पवित्रता सत्-विचार, सत्-प्राचार, सत्-विश्वास और सत्य यत्न से ही हो सकती है। वास्तव में परम पवित्र स्वरूप तो एक जीवन-शक्ति श्रात्म-सत्ता ही है, जो तमाम खेदों और विकारों से न्यारी है और नित्य ही परिपूर्ण आनन्द-स्वरूप है। उसी शक्ति को परमेश्वर, ब्रह्म, ज्ञान आदि अनन्त नामों से सिद्धों ने उच्चारण किया है और वह ही शक्ति बुद्धि के परे प्रकाश कर रही है। ऐसी महान शक्ति के परायण जब बुद्धि होती है तब असली शुद्धि को प्राप्त हो सकती है। और उस महा-शक्ति के विचार को सत्-विचार कहते हैं। और उस शक्ति के परायण हो करके निर्मल क्रमं शरीर द्वारा करने सत-प्राचार कहते हैं। और उसी शक्ति का अधिक से अधिक इस को विश्वास दृढ़ होना ही सत-विश्वास है। और उसी शक्ति के अनुभव करने का यत्न ही सत् यत्न है।

जो अपना जीवन महज़ दूसरों की कल्याण की खातिर जानता है, और अटल विश्वास से प्रभु परायणता में जो दृढ़ हुआ है और तमाम शारिरिक कर्म जो प्रभु श्राज्ञा में समर्पण करता हुपा निर्मल जीवन क्रिया में विचरता है ऐसे निश्चय वाला पुरुष ही तमाम दुर्मत वासना की मलिनताई को त्याग करके शुद्ध श्रात्मानन्द को प्राप्त होता है।

सदवारणी-

जीव उद्धारक फरम यह, निश्चय करो स्वीकार ।
जीवन को स्थिर कर, मेट सफल विकार ।।
प्रभात सन्या काल दो, हढ़ पेम नीपम यह राख ।
दो घड़ी हरिसुन कीजो, प्रीत के साथ ।।
शुद्ध करो ब्यौहार को, नफा लियो समान ।
घोड़ी लियो बियाज नित, धन ना पावे ।।
लक्ष्मी करे निवास वहां, जहां साचा ब्यौहार ।
मेहनत थोड़ी फल पाया बहुता , ऐसा सुन विचार ।।
खेती और चाकरी में, पर-हक करे पछान ।
शुद्ध कमाई जानिये, जो ऐसा निश्चय मान ।।
सि दिन देवेन्न जो, दुखी दोन अनाथ ।
घट लक्ष्मी पग हो, कना छोड़ साथ ||
यथा शक्त सेवा करें, साधू गुरू प्याचार
मन वांछित त फल पाइये, सोहरा होए परिवार ।।
भल कर ना बेचिये, एक कन्या दूजे सम
तिनकी सेवा करन से, अधिक फल मालूम ।।
निसदिन राखो प्रेम, सत्संगत के माहि ।
अधिक होय ब्यौहार जो, तो पख-पत्र को नित जाहीं ।।।

जीवन की उन्नति करे, मन में दे विश्वास ।
सत् करम की सुध मिले, सब कारज पावे रास ।।
ग्रहार करे नित शुद्ध, बासी अन्न ना खाए ।
बुद्धी होवे सुतन्तर, रोग व्याध सब जोए ।।
नफा समान खरच करे, बचत कीजिये नित्त ।
लक्ष्मी का आदर करे, फिजूल ना स्याने मित ||
पहनावा सादा करे, जो होवे देश की चाल ।
सबसे प्रीती ऊपजे, तन मन होवे निहाल ॥
थोड़ा समय निकालकर, विरघ का कीजे संग |
अनेक गुरा तिनसे मिले, सुन साचो परसंग ||
बहुता रूप जो नित करें, सो बद-याचारी जान।
धन जोबन को नष्ट करें, जीव पाये नित हान|
बूढ़ा वाला जो होए, सबसे खसे प्यारा|
दुर्जन बेचन ना चित घरे, सुख पावे व्यापारा||
चोरी या कपट छल, चौपट ताश शतरंज|
सिनेमा थियेटर जामनी, नित देवे जीव को रंज ।।
भंग तमाखू मंदिरा, चण्ड गांजा जोए ।
चरस अफीम रिश्वत तजे, सो गांजा ही सूर होए ।।
झूठ गवाही और अमानत, जहर सरीखा जान ।
मूरख मित्तर बेहषा नारी, देवे गुणी को जान ।

दिना कारण विना समय, जो दूजे घर जायें।
मिटे लज्जा जावे कोरत, दाग देही को लाये ।।
व्यौथरा को नित देव हैं, घर को करे उजाड़।
बुद्धिमान सो व्याखिये, जो इनका तजे विचार ।।
सच बोले पर दुख हरे, नित झाचा करे ब्योहारा।
गुसी पुरुष का संग करे, ना बैठे कबहूँ बेकार ।।
सत करम में रान को ध्रस्थे, विश्चय रख भरपूरा।
फल बाहें ना तिसका, सहने मिले ठजूरा ।।
सत लेख सत् करम थे, जो गुखी चित्त धारा।
अधिक होये तिस कान्ती, शोमा करें संसारा ।।
परमानन्द तिसको मिले, जो निर्मल करे विचार।
नित ही पाने जीत को, कबहुँ ना हो हार ।।
सत उपदेश सुन गुखी, पावे जीव कल्याण।
'मंगल' यह तत्त बार हैं, मारग मुक्त निशाना ।।

सतपुरुष – संवाद

(1903-1954)

पत्र

(अ) 1-..... प्रेमी जी! तुम सत्संग का प्रोगाम मुक- म्मिल बनाये रखें। ईश्वर करेगा तो कामयाबी हो जावेगी। इस खतरनाक जमाने में ईश्वर ही देश को ख्वाबे - गफलत (मूढ़ता की नींद से जगा सकता है। तुम जिधर भी जाओ इन पुस्तकों का विचार किया करें। आहिस्ता आहिस्ता सब ठीक हो जावेगा। देश बहुत मुद्दत से सोया पड़ा है। जल्दी जागना मुशकल है। इतना जरूरी है कि प्रेमियों की जिन्दगी में कुरबानी का माद्दा (भाव) मा जावे तो फिर ईश्वर सफलता बख्शेंगे। यहां घबराने का मुकाम नहीं है, बल्कि प्रेम द्वारा सबकी सेवा करके सबको जिन्दा करें।

कई महात्माओं की जिन्दगियां (जीवन) तबाह (समाप्त) हो गई हैं अभी तक समता का जीवन प्रकट नहीं हुआ है। चालाकी और खुदगर्जी ने सबको घेरा हुआ है। इसका खुम्याजा (हानि) उठा भी रहे हैं, मगर फिर भी जागृत नहीं हो रहे हैं। इसका असली कारण यह ही है कि असली तालीम (विद्या या ज्ञान) खुदगर्ज प्रालिमों (स्वार्थी विद्वानों) ने अलोप कर दी है जिससे जनता संशे और वहमों में फंस कर असली पुरुषार्थ त्याग बैठी हैं। ग्राप फिर कोशिश करते चलो। मत (कहीं) दीनदयाल की कृपा से सूखी हुई बेल हरी हो जावे।

सदसंग में या प्रसंग) का विचार किया करें। बिलकुल बेफिकर रहें। ईश्वर तुम्हारी कुर्बानी को फ लगाएंगे। कोशिश करते चलो। ईश्वर सत् बुद्धि देवे।

तमाम प्रेमियों को देश और धर्म की जागृति में कोशिश करनी चाहिए। हर वक्त हमको अपने हृदय में देखें। ईश्वर सत् श्रद्धा देवे ..... समता के लिटरे - तर का अच्छी तरह विचार करें। .....हर वक्त मार्ग धर्म में दृढ़ रहो। जो प्रादमी खुद मुस्तकिल मिजाज (दृढ निश् चबी) होता है, वह दूसरों पर काबू पा जाता है।

समता की तालीम एक समुद्र है कोई घालिम फाजिल (विद्वान) इन्कारी नहीं कर सकता। तुम को खुद पहले इसको अपनाना चाहिए। फिर दूसरों की सेवा करनी चाहिए। ईश्वर विश्वास देवे। हर वक्त सच्चो कोशिश धारण करें।

(प्र) 2..... ईश्वर तुम्हारे जीवन को बलवान करें। देश भक्ति और धर्म विश्वास देवें। प्रेमी! जो काम दृढ निश्चय से किया जाता है। उसका समय जरूरी लगता है। तुम जैसे नवजवान जिस बात पर आमादा हो जायें, जरूरी कामयावी हासिल करेंगे इस भारतवर्ष की बिखरी हुई हालत ने सख्त मुसीबत में तमाम जनता को डाल रखा है।

ऐ इस पवित्र भूमि के होनहार सुपुत्रों! तुम्हारा फर्ज है कि एकता की तालिम को खुद ग्रहण करना और दूसरों के कानों तक पहुंचाना। जमाना बड़ा भयंकर धारहा है। इस वास्ते

जरूरी कुछ वक्त निकाल कर सत्संग में हाजिर होकर अपने गुजरे हुए बजुर्गों के जीवन का विचार किया करें। और उनकी कुर बानी को मद्दे नजर रखकर अपने जीवन को भी देश और धर्म की खातिर बनायें। तुम को सिर्फ सदाचारी जीवन और जनता के प्रेम पर जोर देना है। अच्छे-२ वाक्यात सत्संग में विचार किया करें और कुछ वक्त नारायण का स्मरण भी किया करें जिससे बुद्धि बलवान होवे। अपने जीवन को नमूना बनावें। तब खुद-ब-खुद लोग मुतस्सर हो जायेंगे।

समता का लिटरेचर बेशुमार है। हर एक पहलू पर अच्छी तरह से तशरीह होई हुई है। खुद विचार भी किया करें और दूसरों तक पहुचाने की कोशिश करे।

माताओं के अन्दर भी इस तालीम का जजबा प्रकट होवे तब प्रच्छी तरह से बेहतरी हो सकती है।

प्रेमी जी! रामचन्द्र, कृष्णचन्द्र, नानक, बुद्ध, ईसा व मौह- म्मद आदि सब महात्माओं का मिशन समता ही है। हिन्दु इसे तालीम से बहुत दूर चले गये हैं। तुमको चाहिए फिर नए सिरे से उसको प्रकाश करें। तमाम जनता का मिशन समता हो हो जावे। इस संसार में ग्राकर कुछ वक्त देश धर्म की उन्नति की खातिर निकालना चाहिए। जिस जगह भी जाम्रो समता का प्रचार करो और लोगों के टूटे हुए दिलों को टांका लगाओ। कोई फिरका भी होवे उसको समता की तरफ रगबत दिलाओ यह ही असली खुशी और भक्ति है। .....

(ग्रा) वार्तालाप (प्रश्नोत्तर)

जिज्ञासु महाराज जी! साम्यवाद यानि मौजूदा कम्यूनिज्म के बारे में प्राप का क्या ख्याल है ?

सत्पुरुष - लाल! जी साम्यवाद यदि प्राध्यात्म को साथ लिए हुए हो तो ईश्वर का स्वरूप है और यदि खुदगर्जी को साथ लिए हुए है तो संतानियत का स्वरूप है।

असली साम्यवाद यह है कि हर बसर अपने स्वभाव और बादत का गुलाम है। बुद्धि शरीर के हर एक पुर्जे (भंग) की हर समय देखभाल कर रही है। इस शरीर में कितने ही कल और पुजे हैं हर एक का काम अलग अलग है। ये सब के सब इस तीन हाथ भर शरीर के हिस्से जरूर हैं लेकिन सब अपना अपना काम अलग अलग रूप में पूर्ण करते हैं-हाथ, हाथ का काम करता है; कान, कान का काम करता है वगैराह वगैराह । लेकिन बुद्धि कभी भी किसी पुर्जे के साथ गैर (पराये) का सा बर्ताव नहीं करती। यदि प्रांख में तकलीफ हो गई है तो सब तरफ से बुद्धि अपना ध्यान हटा कर आंख में लगा देती है, जब तक कि पांख को धाराम न हो जावे। इसी तरह से और भी शरीर का व्यापार इन्द्रियों और दूसरे शरीर के अगों द्वारा साम्यता से चल रहा है। बुद्धि हर एक अंग की साक्षी होकर सबका समान रूप से ख्याल रखती हैं। टांगें चलने का काम करती हैं और दिमाग सोच विचार का काम करता है। यदि दिमाग यह सोचने लगे कि मैं ऊंचा है, टांगें नीची तो इन

बातों को बुद्धि गवारा नहीं करेगी। वह टांगों की और दिमाग की एक जैसी कद्र करती है क्योंकि दोनों ग्रंग अपनी अपनी जगह पर बड़े हैं।

इसी तरह संसार के स्वरूप में जो कि इस जिस्म के मानिद ही है, इसमें सब बसर (व्यक्ति) एक ही जैसे हैं। राजा का कर्त व्य है कि सबको उनकी योग्यता के माफिक काम देकर राज्य का शासन एक अच्छे तरीके से चलाये । कोई बसर अपने काम करके बड़ा या छोटा नहीं है। उसकी समानता हर वक्त कायम रहनी चाहिए और जिस बसर की जो जरूरत हो वह उसकी योग्यता के माफिक पूर्ण होनी चाहिए यह अमलो साम्यवाद का स्वरूप है । स्वार्थ वाला साम्यवाद टिकाऊ नहीं होता। कुछ परसा चलने के बाद खत्म हो जाता है। फर्ज वाला (प्राकृतिक) साम्यवाद कुदरती निजाम का असली स्वरूप है जो कुदरती जीवन की पुष्टि करता है, जो हमेशा से चलता श्राया है।

जिज्ञासू महाराज जी! क्या धर्म और राजनीति एक जगह रह सकते हैं ?

सत्पुरुष - प्रेमी! धर्म और राजनीति एक दूसरे से अलग अलग न समझ लेकिन रिवाजिक धर्म जो श्राज का धर्म बना हुआ है और शैतानियत जो बाज की राजनीति बनी हुई है एक नहीं हो सकते न ही असल राजनीति के साथ रिवाजिक धर्म का कोई सम्बन्ध है । रिवाजिक धर्म वह ही बातें हैं जो किसी तरह के पन्थ, मत, अदारे, गिरोह के रहन सहन, रीति-रिवाज पोशाक, खान-पान और देश के विशेष तरह के चलन पर सुनह

सिर [निर्भर] हैं। जैसे कि मसलन गिरजाघर जाना, अपने अपने तरीके से परमात्मा की बन्दगी व पूजा करना नमाज पढ़ना, रोजे रखना, चोटी रखना, जनेऊ धारण करना, तिलक लगाना, कड़ा, कच्छा, कंधा, केश व किरपाण धारण करना वगैरह वगैराह सब रिवाजिक धर्म हैं इन सबका असली धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। धर्म का सम्बन्ध पसल में प्रान्तरिक शान्ति के साथ है औौर रिवाजों का सम्बन्ध बाहरी शरीर के साथ है मगर असली धर्म और सही राजनीति एक ही वस्तु है। इसमें किसी भी मजहब-ओ-मिल्लत को दखल नहीं है वह इन्सा नियत [मानवता] का जुज [हिस्सा] है और इन्सानियत को प्रकट करने वाली और फैलाने वाली नीति है।

तमाम जीवों के दुःखों को दूर करके उनको राहत पहुँचाना और सारे जहान (विश्व) को एक कुम्बा (परिवार) जानकर हर एक जी बसर से दिली प्रेम करना, अपनी गजं को त्याग कर हर वक्त दूसरों की भलाई चाहनी - यह सब धर्म और राजनीति के एक ही स्वरूप में घा जाते हैं। इस तरह की राजनीति जब त्यागी राजा लोग चलाते हैं तो सारे संसार में अमन और शान्ति फैल जाती है।

जिज्ञासु -महाराज जी! इस वक्त बड़े दिनों के बाद देश बाजाद हुआ है और यह बड़ी खुश नसीबी है कि मौजूदा वक्त की राज सत्ता देश-सेवकों के हाथ में है जिन्होंने बड़ी कुरबानी करके देश को बाजाद करवाया है। आगे आने वाले वक्त में देश का शासन कैसे चलेगा? इस बारे में बाप कोई रोशनी डालें (वर्ष 1648) ।

सत् पुरूष मी! यह सच है कि देश-भक्तों ने बड़ी कुरबानी देकर देश को आजाद कराया है। परन्तु देश-सेवा और राज-इच्छा दो विपरीत हालतें हैं। राज इच्छा का सम्बन्ध प्रकृति के साथ है और देश सेवा आध्यात्मिक वस्तु है। यह दोनों कभी एक जगह नहीं रह सकतीं। देश-सेवा करने वाला कभी भी राज-इच्छा को धारण करके राजा नहीं बनेगा। यदि बनेगा तो वह ठीक तरह से शासन नहीं कर पावेगा ।

राज ठीक चलाने के लिये चार बातें बड़ी जरूरी है:-

पहली- प्रोरतों की आजादी केवल घरेलू और सामाजिक होवे। इसके अलावा अधिक आाजादी होना ठीक नहीं है। अगर इससे ज्यादा आजादी दी गई तो इसका असर उनसे पैदा होने वाली सन्तान पर पड़ेगा। ऐसी सन्तान वे पैदा नहीं कर सकेंगी जो नेक-सीरत, नेकश्रमल, कुल प्राचारी, दृढ इरादे और दृढ़ निश्चय वाली हो। इसके उलट, जब अधिक आजादी श्रौरतों को दी जावेगी तो वे भ्रष्ट, लम्पट और दुराचारी सन्तान देश में पैदा करेंगी। इससे देश की राज- सता का नाश हो जावेगा। जब प्रागे की नस्ल ही ठीक नहीं होवेगी तो राज कैसे ठोक चलेगा। अर्थात् राज हमेशा प्रजा के अपने विचारों की एकता पर चलता है। इस तरह की संतान, जो भ्रष्ट, लम्पट और दुराचारी होगी, वह कभी भी एकता का संगठन धारण नहीं कर सकेगी।

दूसरी बात --राज की ओर से धन की टकसाल मुनासक्त में जारी होनी चाहिये यानि यह बात सोच-विचार करके

मुनासंबत के तरीके से राज्य की ओर से टकसाल जारी होवे कि जरूरत की चीजें महंगी न होने पायें। लोगों को जरूरत का सामान मुनासिब दामों पर ही प्राप्त होना चाहिये।

तीसरी बात -- धन का बटवारा राज की तरफ से ऐसा समता में होना चाहिये कि ज्यादा अमीर भी लोग न होने पाव और गरीबी भी ज्यादा न हो। यानि राज की तरफ से ऐसी गहरी सावधानी पूर्वक प्रोग्राम बनना चाहिये कि अमीर और गरीब के बीच का फर्क एक दम खत्म हो जावे।

चौथा - राज के कर्मचारी प्रालिम (विद्वान), ग्रामिल (कर्मठ) और हलीम (विनम्र) होने चाहियें। निष्पक्षता और त्याग उनमें कूट-कूट कर भरा होना चाहिये। तब जाकर कहीं राज ठीक चला करता है।

इन फकीरों की कौन सुनता है। इस वक्त देश में मनमानी का राज चल रहा है। अब तुम हो समझ लो कि आगे जाकर क्या होगा।

जिज्ञासू - महाराजजी! भारत का शासन छिन्न-भिन्न हो रहा है। अभी हाल ही में देश गुलामी से प्राजाद हुम्रा है और कर्मचारी गण बजाय देश हित के सोचने के अपनी जेब भरते नज़र आ रहे हैं। चारों तरफ भ्रष्टाचार ही फैलता जा रहा है। इसका कोई कारण गहरा है। (वर्ष १८५३)

सत्पुरुष — लाल जी! भारत का निजाम (शासन) प्रागे

आने वाले वक्त में ठीक होने वाला नहीं है। क्योंकि मान और माया से दूर रहने वाले लोग ही राजनीति ठीक चला सकते है। राज हमेशा बाश्रमल विद्वान लोगों के जरिये चलता है। इस वक्त वे ग्रमल लोगों का टोला इक्ट्ठा हुपा है। इन को पता ही नहीं है कि प्रजा का हित उनके अपने अमल में ही खड़ा है। इस तरह के लोग केवल खुदगर्ज बुद्धि को लिये हुए विचरते हैं। इससे कुछ चलेगा नहीं, यह सबके सब डुबोने वाले हैं। अगर विद्वान बाश्रमल हों तो सब ठीक हो जाता है: अगर वे भ्रमल रहे तो सब कुछ डुबाने वाले ही बनेंगे।

ऐसा ही इस वक्त भारत में हो रहा हैं। अब तुम ही समझो कि वह कैसे रास पर आवे जिसकी बुनियाद ही गलत हो।

राम राज्य का स्वरूप

1. जरूरतों की सुनावत यानि ज्यादा नुमायशी, अय्याशी जिन्दगी मे परहेज।
2. तमाम जनता को आत्म निश्चय की दृढता यानि तोहमात से छुटकारा प्राप्त हो।
3. राज्य-सेवक तथा जनता में परस्पर प्रेम हो।
4. राज्य-सेवक निष्पन्न, निर्लोभ और शुद्धाचारी हो।
5. विद्या का आचरण सदाचारी यानि ब्रह्मचर्य और सादगी महित हो।
6. स्त्री जाति की आजादी एक मर्यादा तक होनी चाहिये। आध्यात्मिक विद्या में स्त्रियों को अधिक दृढ़ता होनी चाहिये।
7. तमाम नशे और ना किस विजाओं पर पाबन्दी होनी चाहिये।
8. कारोबार के तमाम सिलसिले मर्यादा और समय की पाबन्दी सहित होने चाहिये।
9. विद्या निदियासन में लड़के लड़कियों के स्कूल अल्हदा अल्हूदा होने चाहिये एवं सदाचारी जीवन अनुकूल विद्या का प्रबोधन (ज्ञान) होना चाहिये।
10. हर किस्म की विद्या का जो मुस्तहिक (अधिकारी) होवे उसको वैसी ही सिखलानी चाहिये।
11. राज्य का बढ़ता हुआ धन ज्यादा से ज्यादा विद्या दिवासन में खर्च करना चाहिये।

12. सब जीवों को अपनी सही उन्नति की आजादी और सहायता होनी चाहिये।

13. सत् असूलों का ज्यादा से ज्यादा प्रचार होना चाहिये (वानि सादगी, सत्य, सेवा, समानता और प्रेम आदि महागुणों का)।

14. राज्य सेवक निहायत उच्च और पवित्र कर्तव्याचारी हो।

15. अधिक त्याग, अधिक आध्यात्मिक निश्चय, पूर्ण शुद्धाचार, ईश्वर भक्ति और देश-भक्ति में अधिक विश्वास, सब जीवों में समानता भाव, राज्य सेवक और जनता में इन गुणों का होना ही असली राम राज्य है।

सद्वाणी—

राज तेज का चकर चलावे। संगत बल से बहू सुख पावे॥
सो ही देश उन्नति कीजे। इकत्तर होए सत-सार को बूझे।
बैर विरोध का मिटे संताप मिल सत्संग सतनाम अलाप।
एक घड़ी निस दिन नियम राखे। सबै जीव मिल प्रेम रस चाखे॥
वर विकार सकल मिट जाये। सत-गती को निश्चय सो पाये।
ऊँच नीच का होवे कल्याण। रोगी सोगी की होवे पहचान॥
दुखी दलिदी का होवे उपाय। सत-समाज जहाँ रहे समाय॥
मानुष जनम का नीयम धरम सूझे। जनम मरन के अर्थ को बुझे॥
परस्पर सब में आवे प्रेम। सत शील परसे चित्त बेम॥
परहित बुद्धि होवे परगास अधम जीव का होवे दुख नास॥
धनी दलिंद्री इक थाम समाये। प्रभु की प्रभुता तब मन में आये॥
सब के अन्तर सत्-उद्दद्म परगासे। सत्--संगत सतरूप निवासे॥
सत्गुण का होवे परगास। सत्-समाज जहाँ करे विलास॥

मूतमत गुबार सब जाये । मानुष जीवन की सोझी पावे ॥
मानवडियाई औरकीरत उपजावे। सत् समाज जहाँ रहे समावे।
सो ही देश अति कान्ती धारे। जा में निधन सत् समाज अपारे ॥
संगत राजा संगत परजा, संगत करे नियाए ।
'मंगत' संगत सत्त से, सब जग शान्त समाए ॥

विश्व शान्ति संदेश

हर एक मनुष्य, पशु तथा जड़योनि के जीव भी अपनी-अपनी सही शान्ति की खोज में अपनी-अपनी जीवन यात्रा में यत्न-प्रयत्न कर रहे हैं, मगर गहरी गौर करके देखा जावे तो अंजाम (नतीजा) में सब यत्न नामुकम्मिल (अपूर्ण) ही प्रतीत हो रहा है। बल्कि कोई गुणा ज्यादा अशान्ति का ही सामना करना पड़ता है—यह ही परम बंद स्वरूप संसार का अदभुत चक्र है। इस में सही तहकीकात (खोज) जो परम शांन्ति, परम-तृप्ति और परम-निर्भयता के देने वाली है, वह तहकीकात असली है। नहीं तो तमाम यत्न प्रयत्न जो की शान्ति के वास्ते दिन-रात सब कर रहे हैं, अकारथ ही जायेगा यह निश्चय होना चाहिये ।

एक मनुष्य का जीवन तथा सब मनुष्यों का जीवन आन्तरिक अशान्ति में एक ही जैसा है । इस वास्ते जब तक सत्वाद का बुनियादी असूल पूर्ण निश्चय से धारण न किया जावे, तब तक निजी जीवन, पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन तथा राजनैतिक जीवन कभी भी शान्तिमयी नहीं हो सकता है। इस वास्ते इस मादा-वाद (भौतिकवादी) के जमाने से बाहोश हो करके, सत्वाद के मार्ग पर चल करके, निर्मलर त्याग को प्राप्त करके, अपनी-अपनी बढ़ती हुई जरूरतों को मर्यादा

में लाने की कोशिश करनी चाहिये, क्योंकि जरूरतों की अधिकता ही ॥ परम अशान्ति और भ्रष्टाचार के फैलाने वाली है। और तमाम विश्व ॥ में अशान्ति का कारण बनी हुई है।

जो सदाचार की उच्चता को नहीं समझते हैं और ऐसा कहते हैं कि लोक सेवा में अपने जाती (व्यक्तिगत) आचरण की कोई जरूरत नहीं है, बल्कि लोक सेवा का प्रोग्राम मुकम्मल निभाना चाहिये ऐसे सज्जन प्राकृत-मार्ग में बिलकुल अन्जान है क्योंकि सबसे पहले एक दूसरे पर असर आचरण का ही होता है। शुद्ध आचरण वाला पुरुष सब जनता के हृदय में निवास करता है और भ्रष्टावारी चतुर, सब कुछ पब्लिक सेवा करते हुए भी, लोगों के दिलों में उसके जीवन का कोई असर नहीं रहता है। बल्कि जिनकी सेवा की जाती है वे ही दुश्मन बन जाते हैं। इस वास्ते इस निर्णय को अच्छी तरह से समझना चाहिये ।

अगर कोई सही उन्नति करना चाहता है तो पहले अपने आपको सत्परायण बना करके अपने आचरण को अधिक से अधिक शुद्ध करने का यत्न करें। तब उसका उच्च जीवन उसके अपने कल्याण और दूसरों के कल्याण के वास्ते परम शिरोमणि हो सकता है - यह हो सत्पुरु का मार्ग है। अपने त्याग से और अपनी सत्ग्रही भावना से दूसरों के अन्दर सत् त्याग और सत् भावनाएं पैदा होती हैं जो कि असली शान्ति का स्वरूप है। हर एक मनुष्य अपनी सही मानसिक पवित्रता को प्राप्त करने का यत्न करे, क्योंकि परम सुख और सर्व विजय इसी में है और यह ही अमन और शान्ति का रास्ता है।'

समतावाद बनाम ममतावाद

समता व ममता दो हालतें बुद्धि की हैं। समता निरहंकारवाद और ममता अहंकारवाद का स्वरूप है।

समतावाद में सेवा, त्याग, प्रेम, अपने पर जब्त, शरीरिक सुख- दुःख में बराबरी (समानता), देहपरायणता का त्याग, आत्मपरायणता में दृढ़ता अपने सुखों में सन्तोष और दूसरों के दुःखों की निवृत्ति का यत्न धारण करें। तब बुद्धि सही समता के तत्व को अनुभव करके निःखेद स्वरूप हो जाती है। यह ही असली मानुष जीवन का उच्च साधन है और कर्तव्य है।

ममतावाद का निर्णय यह है कि देह के अहंकार में ग्रस्त होकर नाना प्रकार के शारीरिक सुखों की गिरफ्तारी को धारण करना यानि अति मान, अति लोभ, अति ईष्या और अति स्वार्थ वासना अन्तःकरण में धारण करते हुए बाहर से समतावाद के स्वरूप को पेश करके लोगों का एतमाद (confidence) हासिल करना, यानि ऐसे सूक्ष्म कपट में विचरना ही ममतावाद का लक्षण है। अच्छी तरह से विचार कर लेवें। समतावाद का फैलाव तब ही हो सकता है, जब ऐसे सही भिक्षु प्रकट होवें और अपने अमली जीवन द्वारा दूसरों के ममता के अन्धकार को दूर करें। और तालीम भी ऐसी होवे, जिससे बच्चों को उच्च आचरण और समता का बोध प्राप्त होवे।

समतावादी पुरुषों का धर्म

समता मार्ग में उच्च कर्तव्य धारण करना हर एक प्रेमी के वास्ते अधिक जरूरी है कि जिस करके सही धर्म की जागृति होवे और सर्व का कल्याण होवे।

- समता में दुख को प्राप्त करके दूसरों को सुख देना।
- निरादर को प्राप्त करके दूसरों को आदर देना।
- खेद को प्राप्त करके दूसरों से प्रेम करना।
- दूसरों के मानसिक दोनों का परित्याग करके अपने पवित्र आचरण से दूसरों का कल्याण चाहना।
- अपनो अधिक विचारशील बुद्धि होते हुए दूसरे अन्य बुद्धि वालों से अधिक नम्रता प्रेम से व्यवहार करना।
- अपने से दूसरों को नित्य ही श्रेष्ठ जानना और उनके शुभ गुणों को धारण करना
- अपने नित्य-स्वभाव करके दूसरों से हित रखना और शत्रु पन के मुकाबले में अधिक मित्रता से पेश आना।

ही

निर्मल समतावादी पुरुषों का धर्म है।

सद्वाणी--

राज तेज और कीरती, सब ही होये उजाड़।

'मंगत' काया जगत की, पलटे यह आचार ||

सदाचार है ज्ञान की सार। सदाचारी परसे करतार ।।
धरम-करम की सकल यह सार। मन में आवे जो सदाचार ||
अपना सुख नहीं मन को भावे। और सुख दे नित रीजावे
आप ना खावन लावन का चाओ। अमरत भोजन औरों को खिलाओ।।
अपने तन की नहीं सेवा मांगें। अधम जीव के नित चरणी लागे ।।
अपनी आप ना करे वडियाई। और कीरत रहे Lmao समाई ||
सबसे नीचा आप पछाने। सदाचार की सो गत जाने |
दिवस रैन मन ये ही भाओ। और के सुख में नित बरताओ ।।
दुखदाई को सदाचार भी सुख देवे। सत सदाचार को सो जन सेवे ।।

सदाचार है शिरोमणी, सत् मारग निरंकार।
'मंगत' तिसमें जो मरे, सो ही जान अवतार ।।

समतावाद एक नज़र में-

1) समता की दृष्टि में.....
आत्मा मुख्य है;
शरीर गौण।

2) समता के चलन में.....
कथन तुच्छ है;
आचरण श्रेष्ठ।

2) समता के व्यवहार में.....
दुःख सह कर सुख देना
पुण्य है;
सुख लेकर सुख देना
नगण्य।

4) समता की पूजा में.....

सारा जगत प्रभु का रूप है;
और 'अहं' उस महान चैतन्य का अंश।

5) समता के विश्वास में.....

गुरू व्यक्ति नहीं;
ज्ञान ही परम गुरू।

6) समता के लक्ष्य में……..

शरीर का अहं दुःख का रूप है;
आत्म-तल्लीनता आनन्द की खान।

7) समता के उद्देश्य में.....

बहिर्मुखता विलास है;
अन्तर्मुखता परम-शान्ति।

सत् सिमरण

सत्संग इसकी

सत् सीढ़ियां

सेवा हैं

सादगी

प्रभु प्रार्थना (धारतो वाणी)

तू पार ब्रह्म परमेश्वर, तीन काल रछपाल।
नित पाऊँ शरणागति, सत चरण कंवल दयाल ॥
तूं नित पतित उद्धार हैं, पूरण प्रभ जगदीश ।
मोह माया संकट हरो, दीजो ज्ञान संदेश ॥
नित ही तेरे चरण की, मन में रहे प्रीत ।
यूँ दाता दातार है, पुरुषोत्तम सुखरीत ॥
पवन पानी बैसन्तर, धरती और आकाश ।
सबको सिरजनहार लूँ, आदि पुरुष अविनाश ॥
घट-घट व्यापक तूं परमेश्वर, सरब जियाँ आधार ।
अनमति कूकर को राख लें, किरपानिधि करतार ॥
काल करम जाए दूषणा, खल बुद्धि हरो अज्ञान ।
सत शरधा पाऊँ चरण की, अखण्ड प्रेम चित ध्यान ॥
दीनानाथ दयाल लूँ, पल पल होत सहाय
कीरत साधे नाम की, मन तन आए समाय ॥
अन्तर का सब खेद हरो, दीजो सत विश्वास ।
शरणागत हूँ मन्द मति घट अन्तर करो परकाश ॥
अन्तरगत सिमरण करूँ, निरन्तर धरूँ ध्यान।
घट-घट में दर्शन करूँ, आदि पुरुष भगवान ॥
तूं साचा साहिब सरब परकाशी, शब्द रूप आखण्ड ।
गुणी मुनी उस्तति करें, तन मन पायें आनन्द ॥
होवें दयाल लूँ सत परमेश्वर, देवें धीर अपार
निमष निमय सिमरण करूँ, चित चरण रहे आधार ॥
काया अन्तर प्रत्यक्ष होवें, नाद रूप बिस्माद।
पल पल कीजू आरती, तन मन तजूँ व्याध ॥

जग आवन सुफला होवे, तेरी आज्ञा मन में घ्याऊँ।
अन्तरगति करूँ आरती, भव दुस्तर तर जाऊँ॥
अन्धमति मूदा नित प्रति, तेरे चरणी करे पुकार।
"मंगत" माँगे दीना सत धरम सुख सार॥

शान्ति पाठ (समता मंगल)

समता धरम हिरदे रसे, विष ममता होवे नाश।
सत सरूप परमात्मा, जल थल पाऊँ प्रकाश॥
सब जीवों से प्रेम हो, तन मन सेवा धार।
समता साधन पायके, नित परसाँ जय जयकार॥
सत करम सत निश्चय, निर्मल पाऊँ विचार।
"मंगत" समता धार के, जीत चलो संसार॥

सुभाषित

गिन्ती गिने न आ सके, जगत को अचरज वन्त
'मगत, मूल पछानिये, एक रुप भगवन्त ।।

*

सकल भेद की सार है, अभेद रुप भगवन्त
'मंगत' नित ही सिमरिये, सब दोष होवें भसमन्त ||

*

इच्छया चकर में भरम रह्या, लोकालोक संसार
'मंगत' इच्छया रहित है, सत्-सरुप निरंकार ॥

*

कोई वस्तु नहीं संसार में, जो चित्त देवे धीर ।
'मंगत' नाम गोविन्द का हरे सकल तकसीर ॥

*

एक परमेश्वर ध्याय लो, दूजी तज मन आस ।
'मंगत' सब कुछ देत है, रख पूरण विश्वास ॥

*

सत सरुप का निश्चय विनासिया, भयो अधर्म परचार ।
'मंगत' पूजा माया की, करे सकल संसार ॥

*

सब जग मन का खेल है, कर अन्तर मांहि विचार ।

'मंगत' जब मन निश्चल हुआ, आपे रुप करतार ॥

*

जग जीवन देख ना भूलियो, यह पलक घड़ी का खेल ।

'मंगत, सत सिमरण भगवान बिन, नहीं मिटे चौरासी जेल ॥

विषय-सूची

1. महामन्त्र
2. तीर्थ यात्रा सिद्धान्त …4
3. दान का सिद्धान्त …7
4. मूर्ति पूजा का सिद्धान्त …10
5. देवी-देवताओं और ग्रहों की पूजा का सिद्धान्त …14
6. भूत, प्रेत व पितर का सिद्धान्त …22
7. धर्म उपदेशकों के वास्ते हिदायत …27

महा मन्त्र

ओम् ब्रह्म सत्यम् निरंकार ||

अजन्मा अद्वैत पुरुषा सर्व व्यापक ||

कल्याण मूरत परमेश्वराय नमस्त

भूमिका

इस पुस्तिका में वर्तमान काल के एक महान संत सतगुरु मंगतराम जी के सत उपदेशों में से थोड़े-से वचन समता नीति के प्रसंग में से दिए गये हैं.प्रत्येक सत प्रेमी अथवा विचारशील और स्वतंत्र भावयुक्त का जिज्ञासु इन वचनों का विचार करके अपनी बुद्धि को कई संशयों से मुक्त होता पाएगा। इसलिए कि यह वचन एक तत्त्ववेत्ता सतपुरुष के हैं। ऐसा सतपुरुष जिसने अति कठिन अनुशासन और घोर तपस्या द्वारा अपनेआप को सब विचारों से मुक्त किया। जिसने प्रचलित धर्मस्थानों की अति विकृत और भयानक अवस्था को देखा। जिसने जनता को धर्म के नाम पर लुटते और धक्के खाते देखा और यह सब कुछ देखकर जिसने सत का मंडन और असत के खंडन के लिए बड़े सरल शब्दों में जनता को सत-यथ दर्शाने वाले वचन तथा अनुभवी वाणी उच्चारण की। उस संत के विशाल अनमोल उपदेशों में से कुछ वचनामृत, "तीर्थं यात्रा, दान, मूर्तिपूजा" इत्यादि के सम्बन्ध में वचनामृत इस पुस्तिका द्वारा सत के प्रेमियों को भेंट किये जा रहे हैं।

उपर्युक्त संत सत्गुरु मंगतराम जी का जन्म 24 नवम्बर, सन् 1903 ई० में शुभ स्थान गंगोठियाँ (जिला रावलपिंडी पश्चिमी पाकिस्तान में हुआ था। आपने 4 फरवरी, सन् 1954 ई० को देह का त्याग किया। आप जन्म से ही अति दिव्यबुद्धि युक्त और प्रभु- प्रेम तल्लीन थे। आप बाल ब्रह्मचारी अथवा जन्म-सिद्ध थे। आपने भिन्न-भिन्न स्थानों का भ्रमण करके जनता के उद्धार की खातिर जीवन के भिन्न-भिन्न पहलुओं, सत, असत और धर्म, अधर्म

सम्बन्धी अनेक विषयों पर वाणी तथा विचार प्रकट फरमाये। आपको अनुभवी वाणी ग्रंथ 'श्री समता प्रकाश' में संग्रहीत है और वचन पंच श्री समता विलास' में इन दोनों ग्रंथों का विचार- पूर्व स्वाध्याय हर मानव मात्र के लिए लाभकारी है।

"संगत समतावाद"

तीर्थ यात्रा सिद्धान्त

1. तीर्थ वह ही जगह होती है जिस जगह कोई ईश्वर का प्यारा पैदा हुआ हो, या रिहाइश (निवास) की हो, या प्राणों का त्याग किया हो, या जिस जगह धर्मयुद्ध या धर्म की मर्यादा स्थापित की हो, या ईश्वर का तप किया हो।

2. तीर्थों पर जाने से सिर्फ इन हालात के मुताबिक विचार करना गुजिशता (गुजरे जमाने और गुजरे हुए बुजुर्गों की जिन्दगी (जीवन) से कुछ सबक (शिक्षा) हासिल (प्राप्त) करना है।

3. इन हालातों के बगैर जो जाते हैं वह महज (केवल) वक्त और दौलत को बरबाद करते हैं। तीर्थों के अस्नान से कोई फायदा नहीं जब तक ऊपर के हालात के मुताबिक विचार न किया जावे।

4. सबसे बड़ा तीर्थ आत्मस्वरूप है जो घट-घट व्याप रहा है। उसके जानने से सब जलन नाश हो जाती है।

5. तीर्थों पर दान करने से कोई फायदा नहीं, मुताबिक साधारण जगह के, जिस जगह दान, सेवा आदि शुभगुण बरतते हैं वह जगह ही तीर्थ है।

6. तीर्थों पर पिण्ड भरवाना और गति करवाना सब मन्द निश्चय है। पिण्ड भराने से गति नहीं हो सकती है। अपनी करनी की हर एक जीव सजा पाता है। यह ईश्वर की माया का कानून है।

7. जो चीज देह और मन को ठंडक देने वाली है वह तीर्थ ही

समझें। मसलन, सत्संग, सत्विचार, सत्सेवा, सत्स्मरण, गुरु उपदेश और तपोभूमि का स्थान और विद्या के निध्यास की जगह वरोरा तीर्थ रूप जानने चाहिए।

8. प्रचलित तीर्थ पर जाने की कोई खास जरूरत नहीं है। सत्कर्म और सत्धर्म का धारण करना ही तीर्थ है।

9. तीर्थयात्रा का इतना फल नहीं जितना कि अपने मन में सत्कर्म, विश्वास और सत्स्मरण को धारण किया जावे।

10. जितनी तीर्थयात्रा की प्रभुता बताई गई है, वह सही धर्म के नाशक और धन के लूटने वाले लोगों का प्रचार है।

11. जब तक ईश्वर विश्वास नहीं तब तक कभी भी सत्कर्म और उपकार को धारण नहीं कर सकता। जब तक कर्म की शुद्धि नहीं, कभी भी जीव को शांति नहीं। स्वाहे (चाहे) पद-पद पर तीर्थों की प्रदक्षिणा करे।

12. मूल तीर्थ ईश्वर विश्वास है जो आवागमन रूपी घोर जाल से छुड़ाता है।

13. अपनी बुद्धि को सत्विचार करके निर्मल करें तो तुमको जर्रा जर्रा (कण-कण) तीर्थ रूप दिखाई देगा।

14. धरती की सीनरी (दृश्य) और जल का प्रवाह तीर्थ नहीं हो सकता जब तक कि सर्वशक्तिमान ईश्वर की कथा का वहाँ प्रचार न होवे ।

15. सबसे ज्यादा पाखंड अत्याचार धर्म का नाश इस वक्त तीर्थ स्थानों में जोर पकड़ रहा है। बताओ शांति कहाँ है।

16. लाजमी (आवश्यक) यह है कि हर जगह को तीर्थ बना सकते हो, अपने नेक विचार और उपकार करके। तीर्थों की गुलामी (दासता) दुःख देने वाली है। गुलामी अपने नेक विचार और उपकार की चाहिए जो तीर्थों का मखजन (लक्ष्य) है।

17. ईश्वर विश्वास को धारण करें। सत्कर्म और लोक सेवा का साधन करें। तमाम दुनिया के तीर्थं तुम्हारे चरणों को नमस्कार करेंगे। तू ही श्रेष्ठ आचार को धारण करके अखंड तीर्थ रूप हो जायगा।

18. माँ, बाप, बुजुर्गों तथा हमसाया (पड़ोसी) की, प्रेम करके सेवा करनी बड़ी तीर्थयात्रा है।

दान का सिद्धान्त

1. जो फर्ज (कर्तव्य) करके दान नहीं करता गर्ज (स्वार्थ) को मद्दे नज़र रखकर दान करता है वह निषिद्ध दान है।

2. जो पब्लिक (जनता) की उन्नति की खातिर दान नहीं करता और देवी-देवताओं को खुश करने की ख़ातिर लक्ष्मी सर्फ (खर्च) करता है वह भी निचले दर्जे का दान है।

3. जो नुमायश (दिखावा) को मद्देनजर (नजर में) रखकर दान करता है वह भी अदना (तुच्छ) दान है।

4. यथार्थ यह ही है कि फ़र्ज करके यथाशक्ति योग्य सेवा करनी। सबसे बड़ा दान यह है:

(1) विद्या के प्रचार में खर्च

(2) रोग निवृत्ति की खातिर खर्च

(3) देश और धर्म की जागृति की खातिर खर्च

(4) श्रेष्ठ आचार साधु और विद्वानों के जीवन की
खातिर खर्च

(5) ग़रीबों और यतीमों की उन्नति की खातिर खर्च

(6) सत्संग और समाज के एकत्र करने का खर्च

(7) अन्न और वस्त्र का हरएक नदारद (व्यक्ति जिसके पास
अभाव है) की ख़ातिर खर्च

(8) सरायें, तालाब, कुएँ, बावलियाँ, सड़कें, पुल इनके
तामीर करने (बनवाने) का खर्च, सब दान उच्च कोटि का है।

इससे बड़ी कल्याणता प्राप्त होती है।

5. दूसरे दर्जे का दान अपने कुम्बे (कुटुम्ब) की उन्नति की खातिर खर्च, अपनी गर्ज (स्वार्थ) की खातिर राजा, हाकिम (अधिकारी), हकीम और भाटों की धन से सेवा करनी। देवी- देवताओं और तीर्थों के परसने का खर्च निचले दर्जे का दान है। पूर्ण सिद्धान्त यह है जो राज करके सेवा की जावे, वह अदना है, जो फ़र्ज़ करके (कर्त्तव्य मानकर) सेवा की जाये वह आला (बढ़िया) है, थोड़ी मिकदार (मात्रा) की स्वाहे (चाहे) बड़ी मिकदार की।

6. गर्ज वाली सेवा से वृद्धि निर्मल नहीं हो सकती स्वाहे कितनी ही कोशिश करे। फर्ज को जानकर जो सेवा करता है, वह आत्म उन्नति को प्राप्त होता है। धन, मन और तन की यह तीन प्रकार की कैद इस जीव को है। इन तीनों जंजीरों से छूटने की खातिर त्याग का रास्ता बतलाया गया है। सो उसी त्याग को दान कहते हैं। जो लागर्ज (निःस्वार्थ) भाव को मद्दे नजर रखकर त्याग करता है। वह इन कंदों से छूट जाता है। जो गर्ज करके त्याग करता है वह बार-बार इन जंजीरों में कैद होता है।

7. धन का त्याग-ईश्वर निमित्त और लोक सेवा में जायज है। गर्व को त्यागकर जो दान किया जावे वह निजात (मुक्ति) के देने वाला है।

8. तन का त्याग - परोपकार, कर्म और सच्ची ईश्वर परस्तिश (पूजा) में शरीर को सर्फ़ (खर्च) करना देह अभिमान से निजात मिलती है।

9. मन का त्याग - तमाम वासनाओं को ईश्वर निमित्त त्याग करना, होना और न होना उसकी आज्ञा में देखना, दृढ निश्चय से ईश्वर स्मरण करना, यह मन का त्याग और परम तप है। इससे नेहः कर्म रूप परम आनन्द पार ब्रह्म को प्राप्त हो जाता

है जो असली मुकाम (धाम) है।

यथार्थ निर्णय यह है तन, धन और मन को निष्काम भाव से दूसरे के निमित्त जो सर्फ करता है वह ही परम दानी है और परम भक्त है। ऐसे निष्काम भाव और परोपकार को साधन करते- करते कर्म चक्र से छूटकर नेहः कर्म स्वरूप में लीन हो जाता है। फिर सब वासना खत्म हो जाती है, पूर्ण ब्रह्म रूप हो जाता है। दान रूपी त्योग मार्ग को समझकर हर घड़ी हर लमह (पल) इसके परायण होना चाहिये और अपने जीवन का उद्धार करना चाहिये, यह ही समता मार्ग का निर्णय है।

मूर्ति पूजा का सिद्धान्त

1.हरएक जीव माया की गिरफ्तारी (कंद) में बुतपरस्त (मूर्ति का पुजारी) ही है यानी नाम, रूप और गुण कर्म के भोगने में हरवक्त मुस्तगर्क (मगन) रहता है, किसी हालत में भी तसव्वरे फ़ानी (नश्वर विचारों) से आजाद नहीं होता।

2. परस्तिश (पूजा) करना मन का काम है। अगर मन असत्नाम, रूप के भोग में कैद है तो वह वहदत परस्त (अद्वैतवादी) कैसे हो सकता है।

3. जब तक ख्वाहिशाते नफ़सानी (भोगों की वासना) मौजूद हैं तब तक बुतपरस्त ही बना रहता है। जब तक अपनी देह के मद में गिरफ्तार है तब तक बुतपरस्त ही है।

4. जब तक कर्म का भोगता है तब तक कर्म फल जो स्थूल विकार है उसकी कैद में है।

5. बुत-परस्ती से वहदत परस्ती की तरफ मन को ले जाना है। जब तक मन वृत्ति के आधीन है कभी भी वहदत परस्त नहीं हो सकता ।

6. भक्ति मार्ग में बुतपरस्त यानी मूर्ति की पूजा सिर्फ़ इतना ही कल्याण दे सकती है कि सत्पुरुषों के गुण और कर्म का आदर्श उनके स्वरूप से लिया जावे।

7. आदर्श के बगैर जो मूर्ति पूजा है वह सख्त जहालत (अज्ञानता) है यानी आगे ही जीव जड़ प्रकृति की कैद में है बाकी उपासना भी अगर जड़ स्वरूप की करनी शुरू की तो सब पुरुषार्थ

दुखदाई हो गया, यानी अन्धकार-दर-अन्धकार बढ़ता गया।

8. माया की गिरफ्तारी में जीव स्थल की कैद आ गया। इस केंद से निजात की खातिर उपासना या भक्ति है इस वास्ते जिन पुरुषों ने इस प्रकृति से निजात पाई है उनके आदर्श को धारण करके ऐसा ही यत्न करना चाहिए जिससे स्थूल यानी मादे की परस्तिश से आजाद होकर निराकार स्वरूप में प्राप्त हो जावें।

9. सत्पुरुषों के स्वरूप को देखकर उनका आदर्श धारण करना लाजमी है। अगर उनका आदर्श धारण न किया जावे महज नमस्कार आरती और चर्णामृत से ही मुक्ति या आनन्द जो चाहते हैं वह अन्धकारपरस्ती कर रहे हैं, बजाय शान्ति के अशान्ति को प्राप्त होवेंगे।

10. पीर, पैग़म्बर, गुरु अवतार सबका वजूद (शरीर) पाँच भूत का ही है। जैसे हरएक जीव की प्रकृति की बनावट है।

11. सिर्फ उन सत्पुरुषों के अन्दर जो ज्ञान शक्ति है, यानी आत्म स्थिति है वह ही तेज पूजने योग्य है। यानी निष्कामता, निर्मानता, उदासीनता, निश्चलता आदि दिव्य गुण जो कि ईश्वर सम्बन्धी हैं।

12. सत् पुरुष अपनी प्रकृति को जीत कर सत् स्वरूप में स्थित हुए हैं यानि स्थूल विकार से मुक्त होकर निराकार स्वरूप में लीन हुए हैं। जब तक इस आदर्श को न धारण किया जावे तब तक उनकी देह की पूजा करनी सख्त जहालत है। यानी उन्होंने खुद अपनी देह का जीवन में ही त्याग किया है दूसरे उनकी देह को पूज कर क्या हासिल कर सकते हैं यानी सब अकार्थ है।

13. सत् पुरुषों का ज्ञान स्वरूप पूजने योग्य है न कि महज (केवल) स्थूल आकार। स्थूल आकार की परस्तिश मुक्ति नहीं दे सकती जब तक उनके सही आदर्श को धारण न किया जावे।

14. सत्पुरुष अनेक स्वरूपों में होते आये हैं यानी उनकी

प्रकृति का नाम, रूप, गुण और कर्म न्यारा-न्यारा होता आया है। मगर उनके अन्दर जो ज्ञानस्वरूप है वह एक ही धार का है।

15. इस वास्ते सत्पुरुषों का ज्ञान स्वरूप जो उनका सच्चा जीवन था वह पूजने योग्य है। जिस तरीके से उन महाशक्तियों ने निजात (मुक्ति) हासिल की है यानी स्थूल विकार पर काबू पाया है उस तरीके को धारण करना, यह उनकी सही पूजा है और कल्याण के देने वाली है।

17. सत्पुरुषों का आदर्श धारण करने से अन्तःकरण में सत्यता प्रगट होती है और अज्ञान यांनी स्थूल की कैद से त्याग हासिल (प्राप्त) होता है।

18. जिस भी बुजुर्ग का चित्त में विश्वास होवे उस बुजुर्ग के अन्तर ज्ञान को धारण करना यह उसकी असली पूजा है यानी जिस तरह से वह माया से अतीत होकर ब्रह्मस्वरूप में स्थित हुआ है उसी तरह से उनका ज्ञान ब्रह्म स्थिति देता है यानी नाम, रूप, गुण और कर्म आदि प्रकृति विकार से मुक्ति पाता है।

19. मूर्ति पूजा यानी स्थूल विश्वास कभी भी शान्ति नहीं दे सकता जब तक उसके अन्तर की ज्ञानगति का विश्वास न होवे ।

20. जो भी देहधारी संसार में आया है ख्वाह (चाहे) शुद्ध माया में, स्वाह मलीन माया में, वह गिरफ्तारी (कंद) में है। सत् स्वरूप यानी जीवन शक्ति जो चिह्न वर्ण आकार से न्यारी है उसको प्राप्त होकर के ही उसने मुक्ति आनन्द को हासिल किया।

21. उस आनन्द को जो प्राप्त हुए हैं वह ही पुरुष आदर्श के योग्य हैं। उनका आदर्श उन जैसा ज्ञान देकर उसी आनन्द में लीन कर देता है। इस वास्ते उनका आदर्श पूजने योग्य है, न कि उनकी स्थूल प्रकृति की पूजा ।

22. मूर्ति पूजा वह ही सुखदाई है जिससे उस मूर्ति का आदर्श धारण करके उन जैसा पुरुषार्थ प्राप्त करें। इसके बग़ैर जो कामना रखकर बहुरंग की पूजा करता है वह बन्धन-दर-बन्धन को प्राप्त होता है यानी कभी भी सच्ची खुशी को प्राप्त नहीं होता।

23. अपना पुरुषार्थ ही सब कामना पूर्ण करता है इस वास्ते सत्पुरुषों के वचनों के अनुकूल पुरुषार्थं धारण करके इस संसार की वाजी को जीत लेना चाहिए।

24. जो सत्पुरुषों का आदर्श धारण नहीं करता और उनकी महज़ देह की पूजा करता है, वह पुरुषार्थहीन होकर मार्ग धर्म से पतित हो जाता है और अन्त को घोर नर्क में निवास करता है।

25. बड़ी से बड़ी कोशिश करके सत्पुरुषों का ज्ञान स्वरूप अनुभव करना चाहिये, जिससे अपने अन्तर में वह ज्ञानस्वरूप प्रगट होकर जीव को अखण्ड शान्ति देवे ।

26. स्थूल की कैद यानी बुत परस्ती से कोई भी छूट नहीं सकता जब तक वह ख्वाहिश (इच्छा) का गुलाम (दास) है। इसलिए इस झूठे अन्धकार से छूटने के वास्ते केवल ज्ञान मार्ग है। यानी निराकार शब्द स्वरूप का विश्वासी और अभ्यासी होना यह ही ज्ञान स्वरूप सब गुरु, पीर, अवतारों का साधन है। इसको धारण करके वह अखंड शान्ति को प्राप्त हुए इस वास्ते उन वजुगों के आदर्श अनुकूल अपना जीवन बनाकर इस माया की केंद्र से मुक्त होना चाहिए। यह पूजा असली है। बाकी पाखण्ड अन्धकार परस्ती (पूजा) है। शुद्ध चित्त से विचार करना चाहिए।

देवी-देवताओं और ग्रहों की पूजा का सिद्धान्त

विचार1. पूजा के मानी यह हैं कि किसी की प्रभुता की आराधना करना।

विचार2. जिसकी पूजा से कामना और कल्पना पैदा होवे वह नाकिस (तुच्छ) पूजा है।

विचार3. जिसकी पूजा से वहम, भय और लोभ पैदा होवे, वह भी पूजा नाक़िस है।

विचार4. जिसकी पूजा से मान, छल और चतुराई पैदा होवे, वह पूजा भी नाक़िस है।

विचार5. जिसकी पूजा से ईर्ष्या, बाधा और ममता पैदा होवे वह पूजा भी नाक़िस है।

विचार6. जिसकी पूजा से शोक, गुस्सा और गुमान पैदा होवे वह पूजा भी नाक़िस है।

विचार7. जिसकी पूजा से स्वार्थ और मोह पैदा होवे वह पूजा भी नाक़िस है

विचार8. जिसकी पूजा से द्वन्द्व भ्रम बढ़ता है वह पूजा भी नाक़िस है।

विचार9. जिस पूजा से कर्म वासना फैलती है वह पूजा भी नाक़िस है।

विचार10. जो पूजा मुकर्रर (निश्चित) स्थान के बग़ैर नहीं हो सकती, वह भी नाक़िस पूजा है।

विचार11. जिसकी पूजा से लोक-परलोक का भ्रम बना रहता है वह भी नाक़िस है।

विचार12. जिस पूजा से मन, बुद्धि और कर्म में तबदी बनी रहती है यानी एक भाव नहीं होता वह पूजा भी नाक़िस है।

विचार13. देवी-देवताओं और ग्रह की पूजा, इन विकारों से निजात यानी मुक्ति नहीं दे सकती क्योंकि इन तुच्छ पूजाओं से तृष्णा रूपी विकार नाश नहीं होता। जीव की कल्याण की ख़ातिर (के लिये) पूजा दरकार (आवश्यक) है। जिस पूजा से बजाय कल्याण के इतने विकार पैदा हो जाएँ वह पूजा नहीं, बल्कि अन्धकार परस्ती है।

विचार14. जो चीज़ खुद मजबूर है उसकी पूजा सच्ची शान्ति नहीं दे सकती है।

विचार15. जो चीज़ खुद बनी और बिगड़ी है उसकी पूजा परम आनन्द नहीं दे सकती है।

विचार16. जो चीज़ अपने स्वभाव की मुहताज है उसकी पूजा आनन्द के देने वाली नहीं है।

विचार17. अनेक तरीका की भावना रखकर अनेक देवी- देवताओं, ग्रहों की पूजा करनी सख्त जहालत (अज्ञानता) और विकार के देने वाली है।

विचार18. प्रारब्ध कर्म को कोई शक्ति बदलने वाली नहीं है इस वास्ते कर्मों के अनुसार दुःख-सुख ज़रूरी मिलता है कोई रक्षा नहीं कर सकता। इस वास्ते ईश्वर शक्ति का भरोसा छोड़ कर इन वह्नों का भरोसा रखना कभी भी सुखदायी नहीं हो सकता।

विचार19. अपने कर्मों अनुसार जीव आवागमन में फिरता है। कोई देवी-देवता और ग्रह इस चक्र से छुड़ा नहीं सकता। इस

वास्ते इनकी परस्तिश (पूजा) सब दुखदायी और वहम के देने वाली है।

विचार20. लाख पूजा की जावे ग्रहों का असर मिट नहीं सकता क्योंकि वह भी मजबूरी में विचर रहे हैं जो चीज स्वभाव रखती है वह कभी भी नहीं छोड़ती क्योंकि उसकी जिन्दगी वह ही है। मसलन आग का काम जलाना, पानी का काम बहाना, वायु का काम सुखाना, सूर्य का तपिश देना । बताओ इनकी पूजा करने से यह अपना स्वभाव छोड देवेंगे। नहीं, अपना स्वभाव कोई चीज नहीं छोड़ती, जब तक वह उस स्वरूप से मिट न जाय। ऐसे ही सब निजाम (प्रबंध) को समझें।

विचार21. कर्म चक्र से जीव को सज़ा और जजा मिलती है। देवी-देवता क्या कर सकते हैं। इस वास्ते इनकी पूजा भी गिरफ्तारी (कैद), अधीरता और भ्रम को बढ़ाने वाली है।

विचार22. देवी-देवताओं की पूजा उनके गुण और कर्म का ग्रहण करना है कि जिस शक्ति को धारण करके वह देवी और देवता बने उस शक्ति का विचार करना उनके आदर्श करके ऐसी पूजा धर्म को प्रगट करती है। जैसे-जैसे सत्कर्म और उपकार को उन हस्तियों ने धारण किया है उसी के मुताबिक (अनुसार) अपना जीवन बनाना यह उनकी सच्ची पूजा है। कर्म गति ही देवता बनाती है। कर्म गति ही राक्षस बनाती है। इस वास्ते कर्मों का सुधार ही असली पूजा है। देवी-देवताओं का मार्ग यह ही हैं।

विचार23. जो अनेक प्रकार की कामना रखकर देवी- देवताओं को पूजते हैं उनका गुण और कर्म धारण नहीं करते वह सब निहफल और दुखदायी है।

विचार24. अपने कर्मों के अनुसार ही मन के मनोरथ पूर्ण हो सकते हैं, कोई देवी-देवता इनको बदल नहीं सकता।

विचार25. मौत, जन्म, दुख और सुख सब कर्मों का फल है।

कोई ताकत इनसे छुड़ा नहीं सकती, जरूरी भोग भोगना पड़ता है। गुरु, पीर, अवतार, ज्ञानी, नवी और पैग़म्बर सबको अपनी करनी का फल मिलता है। यह ईश्वर की माया का खेल है।

विचार26. इन सब बातों का विचार करके अपनी करनी को सुधारना चाहिए जो सब तकलीफों से छुड़ाने वाली है।

विचार27. जो कर्म मन करके, बुद्धि करके, इन्द्रियों करके किए जाते हैं उनका फल जरूरी भोगना पड़ता है, कोई छुड़ाने वाला नहीं, स्वाहे (चाहे) तन-मन देवी-देवताओं के अर्पण क्यों न किया जावे।

विचार28. देवी-देवताओं और ग्रहों की पूजा ईश्वरीय विश्वास को और सत्पुरुषार्थ को नाश करने वाली है। इस वास्ते सब पापों की बुनियाद यह ही पूजा है अगर उनकी जिन्दगी का गुण कर्म न विचार किया जावे।

विचार29: जो देवी-देवताओं और ग्रहों की पूजा करने वाले हैं, वह कभी भी निष्काम भावना और परोपकार को धारण नहीं कर सकते। इस वास्ते हर वक्त वहम और भय में गिरफ्तार (कँद) रहते हैं और अपना अमोलक (अनमोल) जन्म झूठे लालच में गँवा देते हैं।

विचार30. सत्कर्म ही देवता बनाने वाला है और मलीन कर्म ही राक्षस बनाने वाला है। इस वास्ते हर घड़ी, हर लमह (पल) सत्कर्म को धारण करना चाहिए।

विचार31. जो पूजा राजं (स्वार्थ) को धारण करके की जाती है वह सब धर्म के विरुद्ध है और आवागमन को देने वाली है।

विचार32. इस दुस्तर (झूठा) संसार से सिवाय ईश्वरीय ज्ञान और सही ईश्वर की पूजा के कभी भी निजात नहीं मिल सकती।

विचार33. जो सर्व शक्तिमान घट-घट व्याप रहा है, देवी- देवताओं और ग्रहों को भी प्रकाशने वाला है, उस परिपूर्ण ईश्वर को छोड़कर नाशवान् चीज़ की पूजा करना व्यर्थ और भ्रम चक्र के देने वाली है।

विचार34. अपने साक्षी भूत ईश्वर की पूजा कर्म जंजाल से छुड़ाने वाली है।

विचार35. कर्म जो किए हैं उनका फल जरूरी भोगना पड़ता है मगर ईश्वर की उपासना से उन कर्मों के फल की आसक्ता से मुक्त हो जाता है यानी निर्द्वन्द्व अवस्था को प्राप्त हो जाता है वह ही स्थान असली खुशी का है। विचार 36. इस माया के अति गुवार से छूटने के वास्ते एक ईश्वर की उपासना लाज़मी (जरूरी) है।

विचार37. तृष्णा रूपी अधिक रोग से छूटने के वास्ते एक अखण्ड अविनाशी रूप की उपासना लाजमी है।

विचार38. कर्मों के फल भोगने में धैर्यवान रहने की ख़ातिर (लिये) एक ईश्वर की पूजा लाज़मी है।

विचार39. निर्भय निर्वास होने की ख़ातिर ईश्वर की उपासना जरूरी है।

विचार40. तमाम दुनिया के ऐश्वर्य ईश्वर-पूजा से प्राप्त होते हैं, जो सर्व शक्तिमान है। इस वास्ते उसकी उपासना लाज़मी है।

विचार41. ईश्वर को छोड़ कर देवी-देवताओं और ग्रहों की पूजा करनी बड़ी जहालत (अज्ञानता) और नास्तिकपन है।

विचार42. सबसे बड़ी ताकत अपना मन है जो ईश्वर के स्वरूप में स्थित हो जावे तो वह खुद देवता है।

विचार43. सत्कर्म को धारण करने वाला ईश्वर पर दृढ़

विश्वास रखने वाला ही देवता है।

विचार44. सबसे निकट तीन काल प्राप्त घट-घट की जाननहार, शुद्ध स्वरूप एकरस रहने वाला, अपने आप में सब ताकत रखने वाला, सब संसार जिसके प्रकाश से प्रकाशित हो रहा है उसको छोड़कर नाश होने वाले और कामनायुक्त शक्तियों की पूजा करनी सब अकार्थ और अन्धकार है।

विचार45. जिसकी पूजा देवी-देवता करते आये हैं उसी ईश्वर की पूजा करनी लाजमी है।

विचार46. ईश्वर एक है, देवी-देवता अनेक हैं। एक को छोड़ कर जो अनेक की पूजा करता है वह किस गति को हासिल (प्राप्त) कर सकता है। यानि संशयशोक के वग़ैर कुछ भी हासिल नहीं कर सकता ।

विचार46. इस संसार में विचार को शुद्ध करके जिस तरीका से देवी-देवताओं ने बुजुर्गी हासिल की है उस तरीका को धारण करके परम पिता परमेश्वर की पूजा करनी चाहिए। यह ही असली पूजा है।

विचार48. हर घड़ी दुख में या सुख में ईश्वर की पूजा और उसकी आज्ञा पालन करनी चाहिए। ईश्वर की भक्ति से सब देवी-देवता अधीन हो जाते हैं। इस वास्ते परम शक्ति नारायण शब्द स्वरूप सर्वव्यापक का स्मरण, ध्यान कीर्तन, उपासना, विचार करना चाहिए उसी के निमित्त दान करना चाहिए यह ही असली पूजा है और कल्याण का मार्ग है।

विचार49. ईश्वर की महिमा के बगैर किसी शक्ति का निश्चय धारण नहीं करना चाहिए। देवी-देवताओं के अन्दर भी ईश्वर का चमत्कार है। ईश्वर ही पूजने योग्य और सर्वसुखदाता है। ईश्वर-विश्वास, ईश्वर उपासना से जीव परम शान्ति को प्राप्त होता है।

विचार50. अवतार, सिद्ध ऋषीश्वर, गुरु, पीर, नबी, रसूल सब उस परम शक्ति को सिमरते आये हैं और लोगों को भी उसकी महिमा का उपदेश देते आये हैं मगर बाद में फ़रेबी (धोखेबाज) लोगों ने ईश्वरीय पूजा और महिमा को गुप्त करके ईश्वर के पूजने वालों की परस्तिश (पूजा) करानी शुरू कर दी जिससे. उनकी पेट-पूजा और जरूरयाते नफसानी (इन्द्रियों की) पूर्ण होने लगीं।

विचार51. एक जीवन स्वरूप सर्वप्रकाशक शक्ति को छोड़ कर अनेक देवी-देवताओं की पूजा ने अति खुदगर्जी (स्वार्थी), ईर्ष्या, छल को प्रगट कर दिया है। जिससे सब जीव अति क्लेशवन्त (दुखी) हो रहे हैं।

विचार52. अपनी सही अकल से, सही कोशिश से, सही विचार से, एक ईश्वर का विश्वास होना चाहिए। उसका स्मरण ध्यान करना चाहिए। सब दुनिया में उसी का प्रकाश देखना चाहिए। ऐसी धारणा ही असली पूजा है और आनन्द के देने वाली है और देवी-देवता बनाने वाली है। हर वक्त ईश्वर विश्वास और लोक सेवा को धारण करना चाहिए। यह ही परम धर्म, परम पूजा, परम योग और परम सिद्धि है। इसके सिवा सब छल और कपट है। शुद्ध बुद्धि करके विचार करना चाहिए।

विचार53. जो ईश्वर को छोड़कर देवी-देवताओं को बलि और भेंट देता है वह खुदगर्ज आत्मघाती है। यानि देवी-देवता न कोई बलि लेता है और न ही बलि लेकर कल्याण दे सकता है। यह रिवाज अन्ध बुद्धि वालों ने जारी किया है। अपनी पेट-पूजा का ज़रिया (साधन) बनाया है। ईश्वर विश्वास और लोक सेवा ही असली कल्याण का मार्ग है। इसी रास्ता पर चलकर देवी-देवताओं की पदवी को हासिल कर सकता है।

विचार54. जो देवी-देवताओं के नाम पर मांस, मदिरा

और कई तरीकों के चढ़ावे देता है या लेता है वह दोनों पाखण्डी असली धर्म का नाश करने वाले हैं।

विचार55. मनुष्य के वास्ते ईश्वर पूजा और लोक सेवा असली धर्म का मार्ग है इसके अलावा जो देवी-देवताओं पर बलियाँ चढ़ाते हैं, वह मार्ग से पतित होकर कई जन्म अधम योनियों को प्राप्त होकर दुख पाते हैं।

विचार56. समता ही आदर्श देवी-देवताओं का है। समता ही ईश्वरी चमत्कार है। इस वास्ते देवी-देवताओं का जीवन विचार करके समता प्राप्ति की कोशिश करनी चाहिए जो नित्य प्रकाश आनन्द स्वरूप है। यह ही साधन असली धर्म है।

"भूत-प्रेत व पितर का सिद्धान्त"

निधान1. संसार में हर एक चीज का वजूद (शरीर) दो ताकतों से बना है यानि चैतन्य और जड़ यानि प्रकृति। चैतन्य (आदि) शुद्ध स्वरूप दायम कायम (नित्य) और एक रस है। अनन्त है। आगाज (आदि) इस्तताम (अन्त) के अमल से परे है। उसी ताकत को असली संसार का मूल कहते हैं। तीन काल सत्य है।

निधान2. प्रकृति यानी फुरना शक्ति- इससे कई अनासर (अणु) पैदा होकर आपस में तबदील (बदलना) होते रहते हैं, यानी हर एक आगाज और इस्तताम के अमल में मसरूफ़ (व्यस्त) रहते हैं। इन तत्त्वों की तबदीली का नाम पैदाइश, मौत व रंग-रंग की दुनिया है।

निधान3. प्रकृति की गिरफ्तारी में जो चैतन्य भासता है। (कंद) उसी का नाम जीव है यानी तत्त्वों की भग्ता शक्ति। जीव का स्वरूप वास्तव में कोई नहीं है। वासना से जैसे-जैसे घट की गिरफ्तारी में आता है उसी प्रकृति का अभिमानी होकर अपना नाम मान लेता है, इसी का नाम अज्ञानता है।

निधान4. प्रकृति हमेशा तबदील होती रहती है। जिस वक्त बेहद तबदीली को प्राप्त होती है उसी का नाम मौत है। पैदा होना और मरना प्रकृति की तबदीली का नाम है। प्रकृति का स्वरूप जीव भ्रान्त है, यानी जीव की कल्पना।

निधान5. जिस वक्त जीव एक शरीर छोड़ता है अपनी वासना के मुताविक (अनुसार) दूसरे वजूद को रचता है यानी धारण करता है। अपनी अज्ञानता ही उसको दूसरे स्वरूप का

अभिमानी बनाती है। इसी तरह वासना की कैद में आकर रंग- रंग की प्रकृति को धारण करता है यानी प्रकट करता है।

निधान6. जो नाम शरीर सम्बन्धी है वह शरीर के साथ ही नाश हो जाता है। बाकी जीव का वास्तव में कोई नाम नहीं है। इस वास्ते भूत, प्रेत व पितर का जो वजूद माना गया है वह सब वहम और भ्रम मात्र है।

निधान7. जीव अपनी कल्पना के अनुसार जिस नये स्वरूप को धारणा करता है उसी नाम रूप का वह अभिमानी है। पिछले नाम रूप का उसको कोई ज्ञान नहीं है और न ही उसकी गिरफ्तारी (कंद) में है।

निधान8. जैसे इधर मानुष देह को छोड़कर अपनी मलीन वासना की गिरफ्तारी से पशु योनि को प्राप्त होता है उस वक्त उसे पशु योनि का मोह और ज्ञान है। पिछले मानुष जन्म के स्वभाव और नाम रूप को अनुभव नहीं कर सकता।

निधान9. भूत, प्रेत व पितर का कोई स्वरूप नहीं है केवल मन का भ्रम है। जीव अपनी वासना अनुसार एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को धारण करता है। जिस वजूद में जाता है उसका वह ही नाम हो जाता है। दायमी (शुरुआत से) उसका नाम कोई नहीं है। जैसे-जैसे तबदीली में आया वैसा ही नाम रूप कल्पना को धारण किया। इसी चक्र को आवागमन कहते हैं।

निधान10. जिस वक्त माया यानी प्रकृति को असत् मानता है और सत्स्वरूप अपनी सत्ता मात्र को पहिचान लेता है उस वक्त यह तबदीली (बदलने) का अमल (चक्र) यानी पैदाइश और मौत की कैद से छूटकर अपने स्वरूप में लीन हो जाता है। जैसे बर्फ पिघल कर पानी हो जाती है। भूल्न पिघल कर स्वर्ण हो जाता है। घट नाश होकर माटी रूप हो जाता है यह ही गति इस जीव की है। जिस वक्त अहंकार यानी कारण पैदाइश नाश

हो जाता है उस वक्त वह नित्य स्वरूप में स्थित हो जाता है। इसी का नाम मोक्ष है।

निधान11. फ़र्ज किया प्रेत, पितर का स्वरूप अगर हो भी तो भी जीव की अपनी कल्पना अनुसार है, उसको उस हालत से छुड़ाने वाला कोई नहीं है जब तक कि वह अपने कर्मों का फल भोग न ले। इस वास्ते जो गति कराने का हक रखता है वह महज पाखण्ड है। यानी जीव को अपनी करनी की सजा जरूर मिलती है, कोई गति नहीं दे सकता।

निधान12. बुद्धि, मन, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी आठ तत्त्वों से स्थूल शरीर यानी कालिब बनता है। यह तत्त्व जीव की कल्पना है। इसको प्रकृति कहते हैं, जो देह को धारण करता है। इन आठ तत्त्वों को ही कल्प कर धारण करता है। जब तक यह आठ तत्त्व आपस में न मिलें तब तक पूर्ण स्वरूप की शक्ल में नहीं आ सकता।

निधान13. चूंकि भूत, प्रेत और पितरों का कोई स्वरूप नहीं है इस वास्ते महज कल्पना है। प्रकृति में इनकी असलियत नहीं मिलती है। क्योंकि प्रकृति आठ तत्त्वों से मिली हुई है और स्थूल रूप में भासती है और जीव का वास्तव रूप कोई नहीं है। इस वास्ते भूत, प्रेत व पितर पाप-कर्म का भय है वजूद (शरीर) कोई नहीं है। सार विचार यह है कि चार प्रकार की कुल दुनिया की पैदाइश है यानी जेरज, अण्डज, स्वेज, अद्भुज। इनके सिवा और कोई वजूद मानना तोहमात परस्ती ही है।

निधान14. जो अति दुराचारी है वह ही इन नामों से पुकारा जाता है और नीच योनि को प्राप्त हुआ नीच कर्म करता है। वह ही मलीन भाव वाला एक किस्म का प्रेत है। भूत, प्रेत व पितर योनी का आदेश है और अहंकार है, वास्तविक कोई स्वरूप नहीं है।

निधान15. हर वक्त एक ईश्वर का विश्वास चाहिये। अपने

कर्मों को श्रेष्ठ करना चाहिये। ईश्वर के ही नाम दान देना चाहिए। भूत, प्रेत व पितर की कल्पना को दूर करना चाहिये। जीव अपनी करनी के अनुकूल कई योनियों को प्राप्त होता है। मगर वह सूक्ष्म से सूक्ष्म भी होवे तो भी दृश्य में आ सकता है। इस वास्ते भूत, प्रेत व पितर जो नीच योनि का महज (केवल) कल्पित स्वरूप है उसका एहसास (महसूस करना) करना या पूजा करनी निहायत ही नीच गति को देने वाली है। इसलिए इन सब वहमों को छोड़कर एक ईश्वर को आधार मान कर सत्कर्मों को धारण करना चाहिये ऐसी धारणा ही उच्च गति को प्राप्त होती है यानी मोक्ष आनन्द को ।

निधान16. इस माया के जाल से छूटने के वास्ते महज ईश्वर भक्ति और सत्कर्म की धारणा है। इसके सिवा जो भूत, प्रेत व पितरों की पूजा करता है, वह कभी भी उच्च गति को प्राप्त नहीं 'हो सकता।

निधान17. हर एक जीव को अपने कर्मों के अनुकूल सजा मिलती है इस वास्ते अपने सुधार का यत्न करना चाहिये न कि खुद अन्धकार में जावे और दूसरों को गति देवे। अपनी करनी का सुधार हर वक्त मद्देनजर (ध्यान में रख कर ईश्वर विश्वास, स्मरण और ध्यान करना चाहिये। यह ही असली गति है।

निधान18. जो ईश्वर भक्ति और ईश्वर निमित्त दान और सत्कर्म को छोड़ कर भूत, प्रेत तथा पितरों की पूजा में मसरूफ (व्यस्त रहता है वह अन्ध बुद्धि है और धर्म के सही भेद को नहीं जानता है। महज़ तोहमात (केवल ग़लत निश्चय) में समय अनर्थ (व्यर्थ) खो रहा है।

निधान19. हर एक प्राणीमात्र को अपनी गति का विचार करना चाहिये, अगर खुद कैद में है तो दूसरे को कैसे मोक्ष दे सकता है। यह बिलकुल नामुमकिन है। हर घड़ी हर लमह अपना सुधार लाज़मी (जरूरी) है।

निधान20. जब तक जीव अपनी करनी को खुद साफ नहीं करता तब तक उसको कैद से रिहाई (मुक्ति) मुश्किल है। इसलिये सत्पुरुषों के जीवन अनुकूल अपना जीवन बनाकर अपनी गति करनी चाहिये जिससे माया की कैद से रिहाई पाकर परमानन्द स्वरूप को प्राप्त हो जावे।

निधान21. जब तक अपनी करनी खुद साफ नहीं करता तब तक कोई तीर्थ, कोई देवता, कोई मंत्र, गति नहीं दे सकता। इस लिए अपनी करनी का सुधार ही परम गति है। जो जिन्दगी में कुछ नहीं करते और मरने के बाद अपने अय्यास (सन्तान) से गति चाहते हैं, वह सख्त धोबे में हैं।

निधान22. जो करेगा सो पाएगा। एक आदमी दूसरे पर कोई हक नहीं रख सकता जब तक कि वह खुद अपने जीवन को पवित्र न करे। इस वास्ते हर पड़ी अपने आचार को दुरुस्त (शुद्ध) करना चाहिये जिससे गति नसीब होवे ।

निधान23. जो प्राणी इन बहनों में फंसा रहता है वह कभी भी जान्ति हासिल नहीं कर सकता जब तक कि सब बहनों को छोड़कर एक ईश्वर का भरोसा न मेवे ।

निधान24. अपनी-अपनी गति करना हरएक का हक है दूसरे के भरोसे रहना सख्त गलती है। इसलिए जिन्दगी में अपने कल्याण के निमित्त यत्न करना चाहिये।

निधान25. संसार में वह ही जीव गति को प्राप्त होता है जो इन भूत, प्रेत, पित्र आदि ब्रहमों को छोड़कर एक ईश्वर का भरोसा लेवे। हर वक्त सत्कर्म को धारण करे। पाप कर्म की तरफ भूल के न जाय। दृढ निश्चय एक ईश्वर के स्मरण में रखे। कर्ता- हर्त्ता महाप्रभु जानकर सब कुछ उसकी आज्ञा में देखे। लोक सेवा और निर्मान भाव चित्त में धारण करे। तब निष्काम स्वरूप परम आनन्द को प्राप्त हो जाता है फिर मिया च माया में नहीं आता। यह ही जीव की गति है। ऐसा निश्चय धारण करना चाहिए।

धर्म उपदेशकों के वास्ते हिदायत

हिदायत1. धर्म का सही स्वरूप जानना और उसको अमल मलाना (धारण करना) उपदेशक का परम धर्म है।

हिदायत2. जब तक अपना अन्तःकरण बिलकुल शुद्ध न होवे, यानी वासना रूपी विकार से निर्मल न हो चुका होवे। किसी को कोई उपदेश करने का कोई हक नहीं।

हिदायत3. धर्म की जाग्रति की खातिर उपदेश करना तथा लोगों के दुख को महसूस (अनुभव) करके और निष्काम भाव को धारण करके उपदेश करना सत्य उपदेश है।

हिदायत4. जो जाति गजं (स्वार्थ) की खातिर उपदेश देते हैं। यानी अपनी रोजी की गुजरान की खातिर या बढ़ाई की खातिर या लोगों को नाजायज, बरगलाने की खातिर, वह उपदेशक दुराचारी है, देश और धर्म को नाश करने वाला है।

हिदायत5. सत्य, सादगी, सेवा, सत् विश्वास, सत्स्मरण और प्रेम आदि गुणों के बग़ैर जो उपदेशक है वह भी दुराचारी और पाखण्डी है ख़्वाहे कितना ही विद्वान होवे ।

हिदायत6. जिस उपदेशक का लिवास (पहनावा), खुराक और वचन साधारण नहीं है यानी प्रेम और निर्मान भाव नहीं रखता वह उपदेशक धर्म के नाश करने वाला है।

हिदायत7. जो उपदेशक बहुत विद्या का मद (नशा) रखता है और आचार-विचार में सादगी नहीं रखता है, वह भी उपदेशक विकारी है।

हिदायत8. और कोई भी नशा पीने वाला, नुमायण (प्रदर्शनी) को देखने वाला, तांश, चौपड़ और जुआ खेलने वाला और माँस खाने वाला अगर चतुर्वेदी पण्डित भी होवे तो वह दुराचारी है। उनका उपदेश धर्म को नाश करने वाला है और पाप को फैलाने वाला है।

हिदायत9. जिसके अन्दर यतीम (अनाथ), अनाथों और गरीबों का प्रेम नहीं, धन और मद की आस रखकर उपदेश देता है वह भी दुराचारी उपदेशक है।

हिदायत10. जो विचार सादा नहीं करता और गहरे गहरे वाकयात (घटनायें सुनाता है और बहुत जवान दराज (वड बोला) है वह भी पाखण्डी है।

हिदायत11. जिसका मन खुद भोगों में ग्रसा हुआ है वह उप- देशक दुनिया को कभी भी रास्ती (सचाई) नहीं सिखला सकता।

हिदायत12. जो बिल्कुल पुस्तकों का कीड़ा है और कुदरती (प्राकृतिक) अनुभव नहीं रखता वह कभी भी यथार्थ धर्म को न ग्रहण कर सकता है और न ही दूसरों को आगाह (समझा) कर सकता है।

हिदायत13. जो बहुत इतिहास विचार करके लोगों को सुनाता है और खुद एक का भी अमल नहीं करता वह पाखंडी है।

हिदायत14. जिसके उपदेश से ईर्ष्या और बाद प्रगट होवे वह धर्म का नाश करने वाला उपदेशक है।

हिदायत15. जो ब्रह्म ज्ञान से हीन है और छोटे विश्वास वाला है वह उपदेशक भी तुच्छ है।

हिदायत16. जिसके अन्दर खुद सत्य, निर्मानता, निष्कामता, उदासीनता और प्रेम नहीं है वह बड़े से बड़ा विद्वान भी मूर्ख है उसका कभी भी उपदेश ख़ालिस (सत्य) धर्म प्रगट नहीं कर सकता।

हिदायत17. जिसके अन्दर ईश्वरीय विश्वास और परोप-

कार और उदारता नहीं है वह उपदेशक पाखण्डी है। दुनिया को अन्धकार की तरफ ले जाने वाला है।

हिदायत18. जिसके अन्दर देह अभिमान और कुल, जात अभिमान और विद्या अभिमान है वह उपदेशक धर्म का नाश करने वाला है।

हिदायत19. जिसके अन्दर मौत का भय नहीं और ईश्वर से प्रेम नहीं वह कभी भी न पाप से छूट सकता है और न ही लोगों को रास्ती दिखला सकता है।

हिदायत20. जो मान की खातिर उपदेश देता है और खुद प्रेम नहीं रखता वह उपदेशक धर्म का नाश करने वाला है। हिदायत 21. जो स्वार्थ की खातिर उपदेश करता है वह उपदेशक धर्म का नाश करने वाला है।

हिदायत22. जिसका हृदय पूर्ण शीतल नहीं हुआ तत्त्व ज्ञान से, वह दुनिया को रास्ती नहीं सिखला सकता ख़्वाहे तमान दुनिया की विद्या का व्याख्यान क्यों न करे ।

हिदायत23. जो सिर्फ़ विद्वान ही है और अपने अन्दर ईश्वरीय प्रेम और निष्कामता नहीं रखता वह विद्वान नहीं बल्कि बोझ उठाने वाला ढोर (पशु) है।

हिदायत24. जिस कोम में धर्म विश्वास वाला न होवे और विद्वान बहुत होवें एक दिन वह कोम का नाश कर देवेंगे। क्योंकि साधन के बगैर विद्या नाश कर देती है। ऐसा निश्चय करें।

हिदायत25. जिसका मन खुद संशय और वहम वाला है। कितना भी विद्वान होवे वह शान्त अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकता और न किसी को आगाह कर सकता है।

हिदायत26. लोक दिखावे की खातिर जो आरजी (नाममात्र) धर्म रखता है और मान-गुमान (अभिमान) में मुस्तकं (मग्न) रहता है वह उपदेशक पाखण्डी है।

हिदायत27. जिसके अन्दर एक ईश्वर का विश्वास नहीं एक ईश्वर की उपासना नहीं और दुनिया से चित्त जिसका आजाद नहीं और परहित, परोपकार नहीं रखता वह कितना भी विद्वान क्यों न होवे दुराचारी ही जानो।

हिदायत28. जो प्रेम के बगैर है एकता को नहीं चाहता और खुदगर्ज (स्वार्थी) है वह उपदेशक चंडाल का स्वरूप जानो ।

हिदायत29. जो अपनी विद्या का बहुत गुमान रखता है। और हर एक के साथ अन्दर से नफ़रत (घृणा) रखता होवे और इन्द्रियों के भोगों में डूबा हुआ होवे वह विद्वान न समझो बल्कि स्वान (कुत्ता) है। दुनिया को काट-काट कर खाने वाला है। हिदायत 30. जो ज्यादा स्त्रियों को उपदेश देने वाला होवे और धन का लोभी होवे और बहु रंग की चाल चलने वाला होवे, वह उपदेशक मानिन्द (समान) कौवा के है। धर्म-कर्म का नाश करने वाला समझो।

हिदायत31. जिसके अन्दर और है और बाहर से और कहता है वह चालबाज और फरेबी (धोखेबाज) है दुनिया की तबाही करने वाला समझो।

हिदायत32. जो बहुत राग का शौकीन है और वैजन्तर बहुत ताल से बजाता है कभी नाचता है कभी हँसता है वह उप- देशक भी पाखण्डी है।

हिदायत33. जिसके मन में उदासी नहीं है और पापों से डरता नहीं और जीवों से मन करके प्रेम नहीं रखता वह कभी भी धर्म को पहचान नहीं सकता है और न ही लोगों को रास्ती सिखला सकता है।

हिदायत34. उपदेशक के वास्ते विद्या और निध्यास दोनों लाजमी (जरूरी) हैं। निर्मानता और निष्कामता को धारण करने वाला होवे वह उपदेशक दुनिया को सुखदाई है।

हिदायत35. जिसने खुद अपने मन को पापों से आजाद किया है। ईश्वरी प्रेम और विश्वास को दृढ़ किया है। हर वक्त ईश्वर स्मरण को जिसने जाना है। दुनिया के तमाम सामान से आजाद होकर एक ईश्वर का ही भरोसा रखता है। तमाम जीवों को ईश्वर का ही रूप जानकर उनको सुख देना अपना परम धर्म जानता है वह उपदेशक धर्म का प्रकाश करने वाला है।

हिदायत36. जिस सोसाइटी का जो उपदेशक होवे वह उस सोसाइटी को सोशल (सामाजिक) जिन्दगी और रुहानी (आध्यात्मिक) जिन्दगी के सुधार का उपदेश करे वह उपदेशक सुखदाई है।

हिदायत37. जो उपदेशक तत्त्व ज्ञान को प्राप्त हो चुका होवे। धैर्यवान होवे। दुखियों के दुःख को महसूस करने वाला होवे, पाखण्ड को त्याग करने वाला होवे, वह उपदेशक धर्म का प्रकाश करने वाला जानो।

हिदायत38. जिसके अन्दर असली त्याग आया है-और ईश्वरी आनन्द को प्राप्त हुआ है। तमाम जीवों के सुख की चाहना करने वाला है। वह उपदेशक धर्म का अवतार जानना चाहिए।

हिदायत39. जिसने अपने मन और इन्द्रियों को काबू किया है और निष्काम चित्त को धारण किया है। दुःख-सुख में धैर्य वाला है वह उपदेशक धर्म का स्वरूप जानो।

हिदायत40. जिसने समता तत्त्व को धारण किया है और समता ही के साधन में रहता है और हर एक को समता की हिदायत (उपदेश) करता है वह उपदेशक ममता रूपी घोर जाल से छुड़ाने वाला है और सत्यवादी है।

हिदायत41. जो हर घड़ी नेहः कर्म, अवस्था को अनुभव करता है यानी आत्म-स्थिति वाला है। प्रेम और वैराग्य में पूर्ण है वह उपदेशक खुद निजात (मुक्ति) को हासिल (प्राप्त) कर चुका है और लोगों को रास्ता सिखलाने वाला है वह ही जगत गुरु है।

हिदायत42. जिसने शरीर के विकारों से जीत पाई है और ब्रह्म शब्द को प्राप्त हुआ है और हर वक्त ईश्वरीय प्रेम में मग्न रहता है वह तत्त्ववेत्ता पुरुष सच्चा उपदेशक है।

हिदायत43. जिसके अन्दर ब्रह्म प्रकाश हुआ है और माया के विकार से मुक्त हुआ है वह उपदेशक परम सिद्धि देने वाला है।

हिदायत44. जिसने सब संसार के अंजाम (अंत) जाना है, यानी माया की प्रवृति और निवृति को अनुभव किया है वह उप- देशक आनन्द दाता है।

हिदायय45. जिसने पहले सही जाना है और फिर व्याख्यान किया है वह उपदेशक गुणकारी है।

हिदायत46. जिसने पहले अपने मन को उपदेश देकर काबू किया है उसका उपदेश दुनिया को निजात (मुक्ति) देने वाला है।

हिदायत47. अपने सत्वचन पर जो अटल रहने वाला है- तन के नाश होने पर भी जो प्रण नहीं छोड़ता -वह उपदेशक धर्मवादी है।

हिदायत48. जिसने अपना तन, मन, धन ईश्वर अर्पण किया है और दृढ़ निश्चय वाला है वह ही सच्चा उपदेशक है ।

हिदायत49. जो हर वक्त दुखियों की सेवा करने वाला और अपना सुख न चाहने वाला, ईश्वर से प्रेम अधिक रखने वाला है-वह उपदेशक धर्म का सूर्य है।

हिदायत50. जो खुद अमल (आचरण) करता है सत्कर्मों पर और हृदय से सेवक रूप है सब जगत का हर एक जीव का कल्याण चाहने वाला चित्त जिसका, अपने और गैर के साथ एक जैसा प्रेम रखने वाला, सत्वचन और मन का सुशील, परम भक्ति, ईश्वर को धारण करने वाला, निर्मान भाव और सर्व- दयालु उत्साह रखने वाला उपदेशक सब संसार को कल्याण देने वाला है और वह ही धर्म अवतार है।